अनुक्रम ....

प्रास्ताविक

अगर तुम ठान लो, तारे गगन के तोड़ सकते हो।
अगर तुम ठान लो, तूफान का मुख मोड़ सकते हो।।

कहने का तात्पर्य यही है कि जीवन में ऐसा कोई कार्य नहीं जिसे मानव न कर सके। जीवन में ऐसी कोई समस्या नहीं जिसका समाधान न हो।

जीवन में संयम, सदाचार, प्रेम, सहिष्णुता, निर्भयता, पवित्रता, दृढ़ आत्मविश्वास, सत्साहित्य का पठन, उत्तम संग और महापुरुषों का मार्गदर्शन हो तो हमारे लिए अपना लक्षय प्राप्त करना आसान हो जाता है। जीवन को इन सदगुणों से युक्त बनाने के लिए तथा जीवन के ऊँचे-में-ऊँचे ध्येय परमात्म-प्राप्ति के लिए आदर्श चरित्रों का पठन बड़ा लाभदायक है होता है।

पूज्य बापू जी के सत्संग प्रवचनों में से संकलित महापुरुषों, देशभक्ति व साहसी वीर बालकों के प्रेरणादायक जीवन प्रसंगों का यह संग्रह पुस्तक के रूप में आपके करकमलों तक पहुँचाने का बालयत्न समिति ने किया है। आप इसका लाभ लें और इसे दूसरों तक पहुँचा कर पुण्यभागी बनें।

श्री योग वेदान्त सेवा समिति
अमदावाद आश्रम।

हानिकारक और लाभदायक बातें

सात बातें बड़ी हानिकारक हैं-
अधिक बोलना, व्यर्थ का भटकना, अधिक शयन, अधिक भोजन, श्रृंगार, हीन भावना और अहंकार।
जीवन में निम्नलिखित आठ गुण हों तो वह बड़ा यशस्वी हो जाता हैः
शांत स्वभाव, उत्साह, सत्यनिष्ठा, धैर्य, सहनशक्ति, नम्रता, समता, साहस।

अनुक्रम

सबसे श्रेष्ठ संपत्तिः चरित्र

चरित्र मानव की श्रेष्ठ संपत्ति है, दुनिया की समस्त संपदाओं में महान संपदा है। पंचभूतों से निर्मित मानव-शरीर की मृत्यु के बाद, पंचमहाभूतों में विलीन होने के बाद भी जिसका अस्तित्व बना रहता है, वह है उसका चरित्र।

चरित्रवान व्यक्ति ही समाज, राष्ट्र व विश्वसमुदाय का सही नेतृत्व और मार्गदर्शन कर सकता है। आज जनता को दुनियावी सुख-भोग व सुविधाओं की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी चरित्र की। अपने सुविधाओं की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी की चरित्र की। अपने चरित्र व सत्कर्मों से ही मानव चिर आदरणीय और पूजनीय हो जाता है।

स्वामी शिवानंद कहा करते थेः

"मनुष्य जीवन का सारांश है चरित्र। मनुष्य का चरित्रमात्र ही सदा जीवित रहता है। चरित्र का अर्जन नहीं किया गया तो ज्ञान का अर्जन भी किया जा सकता। अतः निष्कलंक चरित्र का निर्माण करें।"

अपने अलौकिक चरित्र के कारण ही आद्य शंकराचार्य, महात्मा बुद्ध, स्वामी विवेकानंद, पूज्य लीलाशाह जी बापू जैसे महापुरुष आज भी याद किये जाते हैं।

व्यक्तित्व का निर्माण चरित्र से ही होता है। बाह्य रूप से व्यक्ति कितना ही सुन्दर क्यों न हो, कितना ही निपुण गायक क्यों न हो, बड़े-से-बड़ा कवि या वैज्ञानिक क्यों न हो, पर यदि वह चरित्रवान न हुआ तो समाज में उसके लिए सम्मानित स्थान का सदा अभाव ही रहेगा। चरित्रहीन व्यक्ति आत्मसंतोष और आत्मसुख से वंचित रहता है। आत्मग्लानि व अशांति देर-सवेर चरित्रहीन व्यक्ति का पीछा करती ही है। चरित्रवान व्यक्ति के आस-पास आत्मसंतोष, आत्मशांति और सम्मान वैसे ही मंडराते हैं. जैसे कमल के इर्द-गिर्द भौंरे, मधु के इर्द-गिर्द मधुमक्खी व सरोवर के इर्द-गिर्द पानी के प्यासे।

चरित्र एक शक्तिशाली उपकरण है जो शांति, धैर्य, स्नेह, प्रेम, सरलता, नम्रता आदि दैवी गुणों को निखारता है। यह उस पुष्प की भाँति है जो अपना सौरभ सुदूर देशों तक फैलाता है। महान विचार तथा उज्जवल चरित्र वाले व्यक्ति का ओज चुंबक की भाँति प्रभावशाली होता है।
भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निमित्त बनाकर सम्पूर्ण मानव-समुदाय को उत्तम चरित्र-निर्माण के लिए श्रीमद् भगवद् गीता के सोलहवें अध्याय में दैवी गुणों का उपदेश किया है, जो मानवमात्र के लिए प्रेरणास्रोत हैं, चाहे वह किसी भी जाति, धर्म अथवा संप्रदाय का हो। उन दैवी गुणों को प्रयत्नपूर्वक अपने आचरण में लाकर कोई भी व्यक्ति महान बन सकता है।

निष्कलंक चरित्र निर्माण के लिए नम्रता, अहिंसा, क्षमाशीलता, गुरुसेवा, शुचिता, आत्मसंयम, विषयों के प्रति अनासक्ति, निरहंकारिता, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि तथा दुःखों के प्रति

अंतर्दृष्टि, निर्भयता, स्वच्छता, दानशीलता, स्वाध्याय, तपस्या, त्याग-परायणता, अलोलुपता, ईर्ष्या, अभिमान, कुटिलता व क्रोध का अभाव तथा शाँति और शौर्य जैसे गुण विकसित करने चाहिए।

कार्य करने पर एक प्रकार की आदत का भाव उदय होता है। आदत का बीज बोने से चरित्र का उदय और चरित्र का बीज बोने से भाग्य का उदय होता है। वर्तमान कर्मों से ही भाग्य बनता है, इसलिए सत्कर्म करने की आदत बना लें।

चित्त में विचार, अनुभव और कर्म से संस्कार मुद्रित होते हैं। व्यक्ति जो भी सोचता तथा कर्म करता है, वह सब यहाँ अमिट रूप से मुद्रित हो जाता है। व्यक्ति के मरणोपरांत भी ये संस्कार जीवित रहते हैं। इनके कारण ही मनुष्य संसार में बार-बार जन्मता-मरता रहता है।

दुश्चरित्र व्यक्ति सदा के लिए दुश्चरित्र हो गया – यह तर्क उचित नहीं है। अपने बुरे चरित्र व विचारों को बदलने की शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान है। आम्रपाली वेश्या, मुगला डाकू, बिल्वमंगल, वेमना योगी, और भी कई नाम लिये जा सकते हैं। एक वेश्या के चँगुल में फँसे व्यक्ति बिल्वमंगल से संत सूरदास हो गये। पत्नी के प्रेम में दीवाने थे लेकिन पत्नी ने विवेक के दो शब्द सुनाये तो वे ही संत तुलसीदास हो गये। आम्रपाली वेश्या भगवान बुद्ध की परम भक्तिन बन कर सन्मार्ग पर चल पड़ी।

बिगड़ी जनम अनेक की सुधरे अब और आज।

यदि बुरे विचारों और बुरी भावनाओं का स्थान अच्छे विचारों और आदर्शों को दिया जाए तो मनुष्य सदगुणों के मार्ग में प्रगति कर सकता है। असत्यभाषी सत्यभाषी बन सकता है, दुष्चरित्र सच्चरित्र में परिवर्तित हो सकता है, डाकू एक नेक इन्सान ही नहीं ऋषि भी बन सकता है। व्यक्ति की आदतों, गुणों और आचारों की प्रतिपक्षी भावना (विरोधी गुणों की भावना) से बदला जा सकता है। सतत अभ्यास से अवश्य ही सफलता प्राप्त होती है। दृढ़ संकल्प और अदम्य साहस से जो व्यक्ति उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ता है, सफलता तो उसके चरण चूमती है।

चरित्र-निर्माण का अर्थ होता है आदतों का निर्माण। आदत को बदलने से चरित्र भी बदल जाता है। संकल्प, रूचि, ध्यान तथा श्रद्धा से स्वभाव में किसी भी क्षण परिवर्तन किया जा सकता है। योगाभ्यास द्वारा भी मनुष्य अपनी पुरानी क्षुद्र आदतों को त्याग कर नवीन कल्याणकारी आदतों को ग्रहण कर सकता है।

आज का भारतवासी अपनी बुरी आदतें बदलकर अच्छा इन्सान बनना तो दूर रहा, प्रत्युत पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण करते हुए और ज्यादा बुरी आदतों का शिकार बनता जा रहा है, जो राष्ट्र के सामाजिक व नैतिक पतन का हेतु है।

जिस राष्ट्र में पहले राजा-महाराजा भी जीवन का वास्तविक रहस्य जानने के लिए, ईश्वरीय सुख प्राप्त करने के लिए राज-पाट, भौतिक सुख-सुविधाओं को त्यागकर ब्रह्मज्ञानी संतों

की खोज करते थे, वहीं विषय-वासना व पाश्चात्य चकाचौंध पर लट्टू होकर कई भारतवासी अपना पतन आप आमंत्रित कर रहे हैं।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सफलता की कुंजी

साधक के जीवन में, मनुष्य मात्र के जीवन में अपने लक्ष्य की स्मृति और तत्परता होनी ही चाहिए। जो काम जिस समय करना चाहिए कर ही लेना चाहिए। संयम और तत्परता सफलता की कुंजी है। लापरवाही और संयम का अनादर विनाश का कारण है। जिस काम को करें, उसे ईश्वर का कार्य मान कर साधना का अंग बना लें। उस काम में से ही ईश्वर की मस्ती का आनंद आने लग जायेगा।

दो किसान थे। दोनों ने अपने-अपने बगीचे में पौधे लगाये। एक किसान ने बड़ी तत्परता से और ख्याल रखकर सिंचाई की, खाद पानी इत्यादि दिया। कुछ ही समय में उसका बगीचा सुंदर नंदनवन बन गया। दूर-दूर से लोग उसके बगीचे में आने लगे और खूब कमाई होने लगी।

दूसरे किसान ने भी पौधे तो लगाये थे लेकिन उसने ध्यान नहीं दिया, लापरवाही की, अनियमित खाद-पानी दिये। लापरवाही की तो उसको परिणाम वह नहीं मिला। उसका बगीचा उजाड़ सा दिखता था।

अब पहले किसान को तो खूब यश मिलने लगा, लोग उसको सराहने लगे। दूसरा किसान अपने भाग्य को कोसने लगा, भगवान को दोषी ठहराने लगा। अरे भाई ! भगवान ने सूर्य कि किरणें और वृष्टि तो दोनों के लिए बराबर दी थी, दोनों के पास साधन थे, लेकिन दूसरे किसान में कमी थी तत्परता व सजगता की, अतः उसे वह परिणाम नहीं मिल पाया।

पहले किसान का तत्पर व सजग होना ही उसकी सफलता का कारण था और दूसरे किसान की लापरवाही ही उसकी विफलता का कारण थी। अब जिसको यश मिल रहा है वह बुद्धिमान किसान कहता है कि 'यह सब भगवान की लीला है' और दूसरा भगवान को दोषी ठहराता है। पहला किसान तत्परता व सजगता से काम करता है और भगवान की स्मृति रखता है। तत्परता व सजगता से काम करने वाला व्यक्ति कभी विफल नहीं होता और कभी विफल हो भी जाता है तो विफलता का कारण खोजता है। विफलता का कारण ईश्वर और प्रकृति नहीं है। बुद्धिमान व्यक्ति अपनी बेवकूफी निकालते हैं और तत्परता तथा सजगता से कार्य करते हैं।

एक होता है आलस्य और दूसरा होता है प्रमाद। पति जाते-जाते पत्नी को कह गयाः "मैं जा रहा हूँ। फैक्टरी में ये-ये काम हैं। मैनेजर को बता देना।" दो दिन बाद पति आया और पत्नी से पूछाः "फैक्टरी का काम कहाँ तक पहुँचा?"

पत्नी बोलीः "मेरे तो ध्यान में ही नहीं रहा।"

यह आलस्य नहीं है, प्रमाद है। किसी ने कुछ कार्य कहा कि इतना कार्य कर देना। बोलेः "अच्छा, होगा तो देखते हैं।" ऐसा कहते हुए काम भटक गया। यह है आलस्य।

आलस कबहुँ न कीजिए, आलस अरि सम जानि।
आलस से विद्या घटे, सुख-सम्पत्ति की हानि।।

आलस्य और प्रमाद मनुष्य की योग्याताओं के शत्रु हैं। अपनी योग्यता विकसित करने के लिए भी तत्परता से कार्य करना चाहिए। जिसकी कम समय में सुन्दर, सुचारू व अधिक-से-अधिक कार्य करने की कला विकसित है, वह आध्यात्मिक जगत में जाता है तो वहाँ भी सफल हो जायगा और लौकिक जगत में भी। लेकिन समय बरबाद करने वाला, टालमटोल करने वाला तो व्यवहार में भी विफल रहता है और परमार्थ में तो सफल हो ही नहीं सकता।

लापरवाह, पलायनवादी लोगों को सुख सुविधा और भजन का स्थान भी मिल जाय लेकिन यदि कार्य करने में तत्परता नहीं है, ईश्वर में प्रीति नहीं है, जप में प्रीति नहीं है तो ऐसे व्यक्ति को ब्रह्माजी भी आकर सुखी करना चाहें तो सुखी नहीं कर सकते। ऐसा व्यक्ति दुःखी ही रहेगा। कभी-कभी दैवयोग से उसे सुख मिलेगा तो आसक्त हो जायेगा और दुःख मिलेगा तो बोलेगाः "क्या करें? जमाना ऐसा है।" ऐसा करकर वह फरियाद ही करेगा।

काम-क्रोध तो मनुष्य के वैरी हैं ही, परंतु लापरवाही, आलस्य, प्रमाद – ये मनुष्य की योग्याओं के वैरी हैं।

अदृढं हतं ज्ञानम्।

'भागवत' में आता है कि आत्मज्ञान अगर अदृढ है तो मरते समय रक्षा नहीं करता।

प्रमादे हतं श्रुतम्।

प्रमाद से जो सुना है उसका फल और सुनने का लाभ बिखर जाता है। जब सुनते हैं तब तत्परता से सुनें। कोई वाक्य या शब्द छूट न जाय।

संदिग्धो हतो मंत्रः व्यग्रचित्तो हतो जपः।

मंत्र में संदेह हो कि 'मेरा यह मंत्र सही है कि नहीं? बढ़िया है कि नहीं?' तुमने जप किया और फिर संदेह किया तो केवल जप के प्रभाव से थोड़ा बहुत लाभ तो होगा लेकिन पूर्ण लाभ तो निःसंदेह होकर जप करने वाले को हो ही होगा। जप तो किया लेकिन व्यग्रचित्त होकर बंदर-छाप जप किया तो उसका फल क्षीण हो जाता है। अन्यथा एकाग्रता और तत्परतापूर्वक जप से बहुत लाभ होता है। समर्थ रामदास ने तत्परता से जप कर साकार भगवान को प्रकट कर दिया था। मीरा ने जप से बहुत ऊँचाई पायी थी। तुलसीदास जी ने जप से ही कवित्व शक्ति विकसित की थी।

जपात् सिद्धिः जपात् सिद्धिः जपात् सिद्धिर्न संशयः।

जब तक लापरवाही है, तत्परता नहीं है तो लाख मंत्र जपो, क्या हो जायेगा? संयम और तत्परता से छोटे-से-छोटे व्यक्ति को महान बना देती है और संयम का त्याग करके विलासिता

और लापरवाही पतन करा देती है। जहाँ विलास होगा, वहाँ लापरवाही आ जायेगी। पापकर्म, बुरी आदतें लापरवाही ले आते हैं, आपकी योग्यताओं को नष्ट कर देते है और तत्परता को हड़प लेते हैं।

किसी देश पर शत्रुओं ने आक्रमण की तैयारी की। गुप्तचरों द्वारा राजा को समाचार पहुँचाया गया कि शत्रुदेश द्वारा सीमा पर ऐसी-ऐसी तैयारियाँ हो रही हैं। राजा ने मुख्य सेनापति के लिए संदेशवाहक द्वारा पत्र भेजा। संदेशवाहक की घोड़ी के पैर की नाल में से एक कील निकल गयी थी। उसने सोचाः 'एक कील ही तो निकल गयी है, कभी ठुकवा लेंगे।' उसने थोड़ी लापरवाही की। जब संदेशा लेकर जा रहा था तो उस घोड़ी के पैर की नाल निकल पड़ी। घोड़ी गिर गयी। सैनिक मर गया। संदेश न पहुँच पाने के कारण दुश्मनों ने आक्रमण कर दिया और देश हार गया।

कील न ठुकवायी.... घोड़ी गिरी.... सैनिक मरा.... देश हारा।

एक छोटी सी कील न लगवाने की लापरवाही के कारण पूरा देश हार गया। अगर उसने उसी समय तत्पर होकर कील लगवायी होती तो ऐसा न होता। अतः जो काम जब करना चाहिए, कर ही लेना चाहिए। समय बरबाद नहीं करना चाहिए।

आजकल ऑफिसों में क्या हो रहा है? काम में टालमटोल। इंतजार करवाते हैं। वेतन पूरा चाहिए लेकिन काम बिगड़ता है। देश की व मानव-जाति की हानि हो रही है। सब एक-दूसरे के जिम्मे छोड़ते हैं। बड़ी बुरी हालत हो रही है हमारे देश की जबकि जापान आगे आ रहा है, क्योंकि वहाँ तत्परता है। इसीलिए इतनी तेजी से विकसित हो गया।

महाराज ! जो व्यवहार में तत्पर नहीं है और अपना कर्तव्य नहीं पालता, वह अगर साधु भी बन जायेगा तो क्या करेगा? पलायनवादी आदमी जहाँ भी जायेगा, देश और समाज के लिए बोझा ही है। जहाँ भी जायेगा, सिर खपायेगा।

भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धव, सात्यकि, कृतवर्मा से चर्चा करते-करते पूछाः "मैं तुम्हें पाँच मूर्खों, पलायनवादियों के साथ स्वर्ग में भेजूँ यह पसंद करोगे कि पाँच बुद्धिमानों के साथ नरक में भेजूँ यह पसंद करोगे?"

उन्होंने कहाः "प्रभु ! आप कैसा प्रश्न पूछते हैं? पाँच पलायनवादी-लापरवाही अगर स्वर्ग में भी जायेंगे तो स्वर्ग की व्यवस्था ही बिगड़ जायेगी और अगर पाँच बुद्धिमान व तत्पर व्यक्ति नरक में जायेंगे तो कार्यकुशलता और योग्यता से नरक का नक्शा ही बदल जायेगा, उसको स्वर्ग बना देंगे।"

पलायनवादी, लापरवाही व्यक्ति घर-दुकान, दफ्तर और आश्रम, जहाँ भी जायेगा देर-सवेर असफल हो जायेगा। कर्म के पीछे भाग्य बनता है, हाथ की रेखाएँ बदल जाती हैं, प्रारब्ध बदल जाता है। सुविधा पूरी चाहिए लेकिन जिम्मेदारी नहीं, इससे लापरवाह व्यक्ति खोखला हो जाता है। जो तत्परता से काम नहीं करता, उसे कुदरत दुबारा मनुष्य-शरीर नहीं देती। कई लोग अपने-

आप काम करते हैं, कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनसे काम लिया जाता है लेकिन तत्पर व्यक्ति को कहना नहीं पड़ता। वह स्वयं कार्य करता है। समझ बदलेगी तब व्यक्ति बदलेगा और व्यक्ति बदलेगा तब समाज और देश बदलेगा।

जो मनुष्य-जन्म में काम कतराता है, वह पेड़ पौधा पशु बन जाता। फिर उससे डंडे मार-मार कर, कुल्हाड़े मारकर काम लिया जाता है। प्रकृति दिन रात कार्य कर रही है, सूर्य दिन रात कार्य कर रहा है, हवाएँ दिन रात कार्य कर रही हैं, परमात्मा दिन रात चेतना दे रहा है। हम अगर कार्य से भागते फिरते हैं तो स्वयं ही अपने पैर पर कुल्हाड़ा मारते हैं।

जो काम, जो बात अपने बस की है, उसे तत्परता से करो। अपने कार्य को ईश्वर की पूजा समझो। राजव्यवस्था में भी अगर तत्परता नहीं है तो तत्परता बिगड़ जायेगी। तत्परता से जो काम अधिकारियों से लेना है, वह नहीं लेते क्योंकि रिश्वत मिल जाती है और वे लापरवाह हो जाते हैं। इस देश में 'ऑपरेशन' की जरूरत है। जो काम नहीं करता उसको तुरंत सजा मिले, तभी देश सुधरेगा।

शत्रु या विरोधी पक्ष की बात भी यदि देश व मानवता के हित की हो तो उसे आदर से स्वीकार करना चाहिए और अपने वाले की बात भी यदि देश के, धर्म के अनुकूल नहीं हो तो उसे नहीं मानना चाहिए।

आप लोग जहाँ भी हो, अपने जीवन को संयम और तत्परता से ऊपर उठाओ। परमात्मा हमेशा उन्नति में साथ देता है। पतन में परमात्मा साथ नहीं देता। पतन मे हमारी वासनाएँ, लापरवाही काम करती है। मुक्ति के रास्ते भगवान साथ देता है, प्रकृति साथ देती है। बंधन के लिए तो हमारी बेवकूफी, इन्द्रियों की गुलामी, लालच र हलका संग ही कारणरूप होता है। ऊँचा संग हो तो ईश्वर भी उत्थान में साथ देता है। यदि हम ईश्वर का स्मरण करें तो चाहे हमें हजार फटकार मिलें, हजारों तकलीफें आयें तो भी क्या? हम तो ईश्वर का संग करेंगे, संतों-शास्त्रों की शरण जायेंगे, श्रेष्ठ संग करेंगे और संयमी व तत्पर होकर अपना कार्य करेंगे-यही भाव रखना चाहिए।

हम सब मिलकर संकल्प करें कि लापरवाही, पलायनवाद को निकालकर, संयमी और तत्पर होकर अपने को बदलेंगे, समाज को बदलेंगे और लोक कल्याण हेतु तत्पर होकर देश को उन्नत करेंगे।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

चार प्रकार के बल

जीवन में सर्वांगीण उन्नति के लिए चार प्रकार के बल जरूरी हैं- शारीरिक बल, मानसिक बल, बौद्धिक बल, संगठन बल।

पहला बल है शारीरिक बल। शरीर तन्दरुस्त होना चाहिए। मोटा होना शारीरिक बल नहीं है वरन् शरीर का स्वस्थ होना शारीरिक बल है।

दूसरा बल है मानसिक बल। जरा-जरा बात में क्रोधित हो जाना, जरा-जरा बात में डर जाना, चिढ़ जाना – यह कमजोर मन की निशानी है। जरा-जरा बात में घबराना नहीं चाहिए, चिन्तित-परेशान नहीं होना चाहिए वरन् अपने मन को मजबूत बनाना चाहिए।

तीसरा बल है बुद्धिबल। शास्त्र का ज्ञान पाकर अपना, कुल का, समाज का, अपने राष्ट्र का तथा पूरी मानव-जाति का कल्याण करने की जो बुद्धि है, वही बुद्धिबल है।

शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक बल तो हो, किन्तु संगठन-बल न हो तो व्यक्ति व्यापक कार्य नहीं कर सकता। अतः जीवन में संगठन बल का होना भी आवश्यक है।

ये चारों प्रकार के बल कहाँ से आते हैं? इन सब बलों का मूल केन्द्र है आत्मा। अपना आत्मा-परमात्मा विश्व के सारे बलों का महा खजाना है। बलवानों का बल, बुद्धिमानों की बुद्धि, तेजस्वियों का तेज, योगियों का योग-सामर्थ्य सब वहीं से आते हैं।

ये चारों बल जिस परमात्मा से प्राप्त होते हैं, उस परमात्मा से प्रतिदिन प्रार्थना करनी चाहिएः

'हे भगवान ! तुझमें सब शक्तियाँ हैं। हम तेरे हैं, तू हमारा है। तू पाँच साल के ध्रुव के दिल में प्रकट हो सकता है, तू प्रह्लाद के आगे प्रकट हो सकता है.... हे परमेश्वर ! हे पांडुरंग ! तू हमारे दिल में भी प्रकट होना....'

इस प्रकार हृदयपूर्वक, प्रीतिपूर्वक व शांतभाव से प्रार्थना करते-करते प्रेम और शांति में सराबोर होते जाओ। प्रभुप्रीति और प्रभुशांति सामर्थ्य की जननी है। संयम और धैर्यपूर्वक इन्द्रियों को नियंत्रित रखकर परमात्म-शांति में अपनी स्थिति बढ़ाने वाले को इस आत्म-ईश्वर की संपदा मिलती जाती है। इस प्रकार प्रार्थना करने से तुम्हारे भीतर परमात्म-शांति प्रकट होती जायेगी और परमात्म-शांति से आत्मिक शक्तियाँ प्रकट होती हैं, जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और संगठन बल को बड़ी आसानी से विकसित कर सकती है।

हे विद्यार्थियो ! तुम भी आसन-प्राणायाम आदि के द्वारा अपने तन को तन्दरुस्त रखने की कला सीख लो। जप-ध्यान आदि के द्वारा मन को मजबूत बनाने की युक्ति जान लो। संत-महापुरुषों के श्रीचरणों में आदरसहित बैठकर उनकी अमृतवाणी का पान करके तथा शास्त्रों का अध्ययन कर अपने बौद्धिक बल को बढ़ाने की कुंजी जान लो और आपस में संगठित होकर रहो। यदि तुम्हारे जीवन में ये चारों बल आ जायें तो फिर तुम्हारे लिए कुछ भी असंभव न होगा।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

अपनी संस्कृति का आदर करें.....

किसी गाँव का एक लड़का पढ़-लिखकर पैसे कमाने के लिए विदेश गया। शुरु में तो उसे कहीं ठिकाना न मिला, परंतु धीरे-धीरे पेट्रोल पंप आदि जगहों पर काम करके कुछ धन कमाया और भारत आया। अब उसके लिए अपना देश भारत 'भारत' नहीं रहा, 'इंडिया' हो गया।

परदेश के वातावरण, बाह्य चकाचौंध तथा इन्द्रियगत ज्ञान से उसकी बुद्धि इतनी प्रभावित हो गयी थी की वह सामान्य विवेक तक भूल गया था। पहले तो वह रोज माता-पिता को प्रणाम करता था, किंतु आज दो वर्ष के बाद इतनी दूर से आने पर भी उसने पिता को प्रणाम न किया बल्कि बोलाः

"ओह, पापा ! कैसे हो?"

पिता की तीक्ष्ण नजरों ने परख लिया कि पुत्र का व्यवहार बदल गया है। दूसरे दिन पिता ने पुत्र से कहाः

"चलो, बेटा ! गाँव में जरा चक्कर लगाकर आयें और सब्जी भी ले आयें।"

पिता पुत्र दोनों गये। पिता ने सब्जीवाले से 250 ग्राम गिल्की तौलने के लिए कहा।

पुत्रः "पापा ! आपके इंडिया में इतनी छोटी-छोटी गिल्की? हमारे अमेरिका में तो इससे दुगनी बड़ी गिल्की होती है।"

अब इंडिया उसका अपना न रहा, पिता का हो गया। कैसी समझ ! अपने देश से कोई पढ़ने या पैसा कमाने के लिए परदेश जाय तो ठीक है, किंतु कुछ समय तक वहाँ रहने के बाद वहाँ की बाह्य चकाचौंध से आकर्षित होकर अपने देश का गौरव तथा अपनी संस्कृति भूल जाय, वहाँ की फालतू बातें अपने दिमाग में भल ले और यहाँ आने पर अपने बुद्धिमान बड़े-बुजुर्गों के साथ ऐसा व्यवहार करें, इससे अधिक दूसरी क्या मूर्खता होगी?

पिता कुछ न बोले। थोड़ा आगे गये। पिता ने 250 ग्राम भिंडी तुलवायी। तब पुत्र बोलाः

"ह्वाट इज़ दिस, पापा? इतनी छोटी भिंडी ! हमारे अमेरिका में तो बहुत बड़ी-बड़ी भिंडी होती है।"

पिता को गुस्सा आया किंतु वे सत्संगी थे, अतः अपने मन को समझाया कि कबसे डींग हाँक रहा है... मौका देखकर समझाना पड़ेगा। प्रकट में बोलेः

"पुत्र ! वहाँ सब ऐसा खाते होंगे तो उनका शरीर भी ऐसा ही भारी-भरकम होगा और उनकी बुद्धि भी मोटी होगी। भारत में तो हम सात्त्विक आहार लेना पसन्द करते हैं, अतः हमारे मन-बुद्धि भी सात्त्विक होते हैं।"

चलते-चलते उनकी तरबूज के ढेर पर गयी। पुत्र ने कहाः "पापा ! हम वॉटरमेलन (तरबूज) लेंगे?"

पिता ने कहाः "बेटा ! ये नींबू हैं। अभी कच्चे हैं, पकेंगे तब लेंगे।"

पुत्र पिता की बात का अर्थ समझ गया और चुप हो गया।

परदेश का वातावरण ठंडा और वहाँ के लोगों का आहार चर्बीयुक्त होने से उनकी त्वचा गोरी तथा शरीर का कद अधिक होता है। भौतिक सुख-सुविधाएँ कितनी भी हों, शरीर चाहे कितना भी हृष्ट-पुष्ट और गोरा हो लेकिन उससे आकर्षित नहीं होना चाहिए।

वहाँ की जो अच्छी बाते हैं उनको तो हम लेते नहीं, किंतु वहाँ के हलके संस्कारों के हमारे युवान तुरंत ग्रहण कर लेते हैं। क्यों? क्योंकि अपनी संस्कृति के गौरव से वे अपरिचित हैं। हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा प्रदत्त ज्ञान की महिमा को उन्होंने अब तक जाना नहीं है। राम तत्त्व के, कृष्ण तत्त्व के, चैतन्य-तत्त्व के ज्ञान से वे अनभिज्ञ हैं।

वाईन पीने वाले, अण्डे-मांस-मछली खाने वाले परदेश के लेखकों की पुस्तकें खूब रुपये खर्च करके भारत के युवान पढ़ते हैं, किंतु अपने ऋषि मुनियों ने वल्कल पहनकर, कंदमूल, फल और पत्ते खाकर, पानी और हवा पर रहकर तपस्या-साधना की, योग की सिद्धियाँ पायीं, आत्मा-परमात्मा का ज्ञान पाया और इसी जीवन में जीवनदाता से मुलाकात हो सके ऐसी युक्तियाँ बताने वाले शास्त्र रचे। उन शास्त्रों को पढ़ने का समय ही आज के युवानों के पास नहीं है।

उपन्यास, अखबार और अन्य पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने को समय मिलता है, मन मस्तिष्क को विकृत करने वाले तथा व्यसन, फैशन और विकार उभारने वाले चलचित्र व चैनल देखने को समय मिलता है, फालतू गपशप लगाने को समय मिलता है, शरीर को बीमार करने वाले अशुद्ध खान-पान के लिए समय मिलता है, व्यसनों के मोह में पड़कर मृत्यु के कगार पर खड़े होने के लिए समय मिलता है लेकिन सत्शास्त्र पढ़ने के लिए, ध्यान-साधना करके तन को तन्दुरुस्त, मन को प्रसन्न और बुद्धि को बुद्धिदाता में लगाने के लिए उनके पास समय ही नहीं है। खुद की, समाज की, राष्ट्र की उन्नति में सहभागी होने की उनमें रुचि ही नहीं है।

हे भारत के युवानो ! इस विषय में गंभीरता से सोचने का समय आ गया है। तुम इस देश के कर्णधार हो। तुम्हारे संयम, त्याग, सच्चरित्रता, समझ और सहिष्णुता पर ही भारत की उन्नति निर्भर है।

वृक्ष, कीट, पशु, पक्षी आदि योनियों में जीवन प्रकृति के नियमानुसार चलता है। उन्हें अपने विकास की स्वतंत्रता नहीं होती है लेकिन तुम मनुष्य हो। मनुष्य जन्म में कर्म करने की स्वतन्त्रता होती है। मनुष्य अपनी उन्नति के लिए पुरुषार्थ कर सकता है, क्योंकि परमात्मा ने उसे समझ दी है, विवेक दिया है।

अगर तुम चाहते हो सफल उद्योगपति, सफल अभियंता, सफल चिकित्सक, सफल नेता आदि बनकर राष्ट्र के विकास में सहयोगी हो सकते हो, साथ ही किसी ब्रह्मवेत्ता महापुरुष का

सत्संग-सान्निध्य तथा मार्गदर्शन पाकर अपने शिवत्व में भी जाग सकते हो। इसीलिए तुम्हें यह मानव तन मिला है।

भर्तृहरि ने भी कहा हैः

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः।।

"जब तक काया स्वस्थ है और वृद्धावस्था दूर है, इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्यों को करने में अशक्त नहीं हुई हैं तथा जब तक आयु नष्ट नहीं हुई है, तब तक विद्वान पुरुष को अपने श्रेय के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। घर में आग लग जाने पर कुआँ खोदने से क्या लाभ?"

(वैराग्यशतकः 75)

अतः हे महान देश के वासी ! बुढ़ापा, कमजोरी व लाचारी आ घेरे, उसके पहले अपनी दिव्यता को, अपनी महानता को, महान पद को पा लो, प्रिय !

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

माथे पर तो भारत ही रहेगा

अपने ढाई वर्ष के अमरीकी प्रवास में स्वामी रामतीर्थ को भेंटस्वरूप जो प्रचुर धनराशि मिली थी, वह सब उन्होंने अन्य देशों के बुभुक्षितों के लिए समर्पित कर दी। उनके पास रह गयी केवल एक अमरीकी पोशाक। स्वामी राम ने अमरीका से वापस लौट आने के बाद एक वह पोशाक पहनी। कोट पैंट तो पहनने के बजाय उन्होंने कंधों से लटका लिये और अमरीकी जूते पाँव में डालकर खड़े हो गये, किंतु कीमती टोपी की जगह उन्होंने अपना सादा साफा ही सिर पर बाँधा।

जब उनसे पूछा गया कि 'इतना सुंदर हैट तो आपने पहना ही नहीं?' तो बड़ी मस्ती से उन्होंने जवाब दियाः 'राम के सिर माथे पर तो हमेशा महान भारत ही रहेगा, अलबत्ता अमरीका पाँवों में पड़ा रह सकता है....' इतना कह उन्होंने नीचे झुककर मातृभूमि की मिट्टी उठायी और उसे माथे पर लगा लिया।

ॐॐॐॐ

अनुक्रम

धर्मनिष्ठ देशभक्त केशवराव हेडगेवार

विद्यालय में बच्चों को मिठाई बाँटी जा रही थी। जब एक 11 वर्ष के बालक केशव को मिठाई का टुकड़ा दिया गया तो उसने पूछाः "यह मिठाई किस बात की है?"

कैसा बुद्धिमान रहा होगा वह बालक ! जीभ का लंपट नहीं वरन् विवेक विचार का धनी होगा।

बालक को बताया गयाः "आज महारानी विक्टोरिया का बर्थ डे (जन्मदिन) है इसलिए खुशी मनायी जा रही है।"

बालक ने तुरंत मिठाई के टुकड़े को नाली में फेक दिया और कहाः "रानी विक्टोरिया अंग्रेजों की रानी है और उन अंग्रजों ने हमको गुलाम बनाया है। गुलाम बनाने वालों के जन्मदिन की खुशियाँ हम क्यों मनायें? हम तो खुशियाँ तब मनायेंगे जब हम अपने देश भारत को आजाद करा लेंगे।"

वह बुद्धिमान बालक केशव जब नागपुर के 'नीलसिटी हाई स्कूल' में पढ़ता था, तब उसने देखा कि अंग्रेज जोर जुल्म करके हमें हमारी संस्कृति से, हमारे धर्म से, हमारी मातृभक्ति से दूर कर रहे हैं। यहाँ तक कि वन्दे मातरम् कहने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया है !

वह धैर्यवान और बुद्धिमान लड़का हर कक्षा के प्रमुख से मिला और उनके साथ गुप्त बैठक की। उसने कहाः "हम अपनी मातृभूमि में रहते हैं और अंग्रेज सरकार द्वारा हमें ही वन्दे मातरम् कहने से रोका जाता है। अंग्रेज सरकार की ऐसी-तैसी...."

जो हिम्मतवान और बुद्धिमान लड़के थे उन्होंने केशव का साथ दिया और सभी ने मिलकर तय किया कि क्या करना है। लेकिन 'यह बात गुप्त रखनी है और नेता का नाम नहीं लेना है।' यह बात प्रत्येक कक्षा-प्रमुख ने तय कर ली।

ज्यों ही स्कूल का निरीक्षण बड़ा अधिकारी और कुछ लोग केशव की कक्षा में आये, त्यों ही उसके साथ कक्षा के सभी बच्चे खड़े हो गये और बोल पड़ेः वन्दे मातरम् ! शिक्षक भारतीय तो थे लेकिन अंग्रेजों की गुलामी से जकड़े हुए, अतः चौंके। निरीक्षक हड़बड़ाकर बोलेः यह क्या बदतमीजी है? यह वन्दे मातरम् किसने सिखाया? उसको खोजो पकड़ो।

दूसरी कक्षा में गये। वहाँ भी बच्चों ने खड़े होकर कहाः वन्दे मातरम् !

अधिकारीः ये भी बिगड़ गये?

स्कूल की हर एक कक्षा के विद्यार्थियों ने ऐसा ही किया।

अंग्रेज अधिकारी बौखला गया और चिल्लायाः 'किसने दी यह सीख?'

सब बच्चों से कहा गया परंतु किसी ने नाम नहीं बताया।

अधिकारी ने कहाः "तुम सबको स्कूल से निकाल देंगे।"

बच्चे बोलेः "तुम क्या निकालोगे? हम ही चले। जिस स्कूल में हम अपनी मातृभूमि की वंदना न कर सकें, वन्दे मातरम् न कह सकें – ऐसे स्कूल में हमें नहीं पढ़ना।

उन दुष्ट अधिकारियों ने सोचा कि अब क्या करें? फिर उन्होंने बच्चों के माँ बाप पर दबाव डाला कि बच्चों को समझाओ, सिखाओ ताकि वे माफी माँग लें।

केशव के माता पिता ने कहाः "बेटा ! माफी माँग लो।"

केशवः "हमने कोई गुनाह नहीं किया तो माफी क्यों माँगे?"

किसी ने केशव से कहाः "देशसेवा और लोगों को जगाने की बात इस उम्र में मत करो, अभी तो पढ़ाई करो।"

केशवः "बूढ़े-बुजुर्ग और अधिकारी लोग मुझे सिखाते हैं कि देशसेवा बाद में करना। जो काम आपको करना चाहिए वह आप नहीं कर रहे हैं, इसलिए हम बच्चों को करना पड़ेगा। आप मुझे अक्ल देते हैं? अंग्रेज हमें दबोच रहे हैं, हमें गुलाम बनाये जा रहे हैं तथा हिन्दुओं का धर्मांतरण कराये जा रहे हैं और आप चुप्पी साधे जुल्म सह रहे हैं? आप जुल्म के सामने लोहा लेने का संकल्प करें तो पढ़ाई में लग जाऊँगा, नहीं तो पढ़ाई के साथ देश की आजादी की पढ़ाई भी मैं पढ़ूँगा और दूसरे विद्यार्थियों को भी मजबूत बनाऊँगा।"

आखिर बडे-बूढ़े-बुजुर्गों को कहना पड़ाः "यह भले 14 वर्ष का बालक लगता है लेकिन है कोई होनहार।" उन्होंने केशव की पीठ थपथपाते हुए कहाः "शाबाश है, शाबाश!"

"आप मुझे शाबाशी तो देते हैं लेकिन आप भी जरा हिम्मत से काम लें। जुल्म करना तो पाप है लेकिन जुल्म सहना दुगना पाप है।"

केशव ने बूढ़े-बुजुर्गों को सरलता से, नम्रता से, धीरज से समझाया।

डेढ़ महीने बाद वह स्कूल चालू हुई। अंग्रेज शासक 14 वर्षीय बालक का लोहा मान गये कि उसके आगे हमारे सारे षडयंत्र विफल हो गये। उस लड़के के पाँच मित्र थे। वैसे ये पाँच मित्र रहते तो सभी विद्यार्थियों के साथ हैं, लेकिन अक्लवाले विद्यार्थी ही उनसे मित्रता करते हैं। वे पाँच मित्र कौन से हैं?

विद्या शौर्यं च दाक्ष्यं च बलं धैर्यं च पंचकम्।
मित्राणि सहजन्याहुः वर्तन्ति एव त्रिर्बुधाः।।

विद्या, शूरता, दक्षता, बल और धैर्य – ये पाँच मित्र सबके पास हैं। अक्लवाले विद्यार्थी इनका फायदा उठाते हैं, लल्लू-पंजू विद्यार्थी इनसे लाभ नहीं उठा पाते।

केशव के पास ये पाँचों मित्र थे। वह शत्रु और विरोधियों को भी नम्रता और दक्षता से समझा-बुझाकर अपने पक्ष में कर लेता था।

एक बार नागपुर के पास यवतमाल (महाराष्ट्र) में केशव अपने साथियों के साथ कहीं टहलने जा रहा था। उस जमाने में अंग्रेजों का बड़ा दबदबा था। वहाँ का अंग्रेज कलेक्टर तो

इतना सिर चढ़ गया था कि कोई भी उसको सलाम मारे बिना गुजरता तो उसे दंडित किया जाता था।

सैर करने जा रहे केशव और उसके साथियों को वही अंग्रेज कलेक्टर सामने मिला। बड़ी-बड़ी उम्र के लोग उसे प्रणाम कर रहे थे। सबने केशव से कहाः "अंग्रेज कलेक्टर साहब आ रहे हैं। इनको सलाम करो।"

उस 15-16 वर्षीय केशव ने प्रणाम नहीं किया। कलेक्टर के सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया और कहाः "तू प्रणाम क्यों नहीं करता? साहब तेरे से बड़े हैं।"

केशवः "मैं इनको प्रणाम क्यों करूँ? ये कोई महात्मा नहीं हैं, वरन् सरकारी नौकर हैं। अगर अच्छा काम करते तो आदर से सलाम किया जाता, जोर जुल्म से प्रणाम करने की कोई जरूरत नहीं है।"

सिपाहीः "अरे बालक ! तुझे पता नहीं, सभी लोग प्रणाम करते हैं और तू ऐसी बाते बोलता है?"

कलेक्टर गुर्राकर देखने लगा। अंग्रेज कलेक्टर की तरफ प्रेम की निगाह डालते हुए केशव ने कहाः "प्रणाम भीतर के आदर की चीज होती है। जोर जुल्म से प्रणाम करना पाप माना जाता है, फिर आप मुझे क्यों जोर-जबरदस्ती करके पाप में डालते हो? दिखावटी प्रणाम से आपको क्या फायदा होगा?"

अंग्रेज कलेक्टर का सिर नीचा हो गया, बोलाः "इसको जाने दो, यह साधारण बालक नहीं है।"

15-16 वर्षीय बालक की कैसी दक्षता है कि दुश्मनी के भाव से भरे कलेक्टर को भी सिर नीचे करके कहना पड़ाः 'इसको जाने दो।'

यवतमाल में यह बात बड़ी तीव्र गति से फैल गयी और लोग वाहवाही करने लगेः 'केशव ने कमाल कर दिया ! आज तक जो सबको प्रणाम करवाता था, सबका सिर झुकवाता था, केशव ने उसी का सिर झुकवा दिया !'

पढ़ते-पढ़ते आगे चलकर केशव मेडिकल कॉलेज में भर्ती हुआ। मेडिकल कॉलेज में सुरेंद्र घोष नामक एक बड़ा लंबा तगड़ा विद्यार्थी था। वह रोज 'पुल अप्स' करता था और दंड-बैठक भी लगाता था। अपनी भुजाओं पर उसे बड़ा गर्व था कि 'अगर एक घूँसा किसी को लगा दूँ तो दूसरा न मांगे।'

एक दिन कॉलेज में जब उसने केशव की प्रशंसा सुनी तब वह केशव के सामने गया और बोलाः

"क्यों रे ! तू बड़ा बुद्धिमान, शौर्यवान और धैर्यवान होकर उभर रहा है। है शूरता तो मुझे मुक्के मार, मैं भी तेरी ताकत देखूँ।"

केशवः "नहीं-नहीं, भैया ! मैं आपकी नहीं मारुँगा। आप ही मुझे मुक्के मारिये।" ऐसा कहकर केशव ने अपनी भुजा आगे कर दी।

वह जो पुल अप्स करके, कसरत करके अपने शरीर को मजबूत बनाता था, उसने मुक्के मारे – एक, दो, तीन.... पाँच... पन्द्रह.. पच्चीस... तीस.... चालीस.... मुक्के मारते-मारते आखिर सुरेन्द्र घोष थक गया, पसीने से तर-बतर हो गया। देखने वाले लोग चकित हो गये। आखिर सुरेन्द्र ने कहाः

"तेरा शरीर हाड़-मांस का है कि लोहे का? सच बता, तू कौन है? मुक्के मारते-मारते मैं थक गया पर तू उफ तक नहीं करता?

प्राणायाम का रहस्य जाना होगा केशवराव ने ! आत्मबल बचपन से ही विकसित था। दुश्मनी के भाव से भरा सुरेंद्र घोष केशव का मित्र बन गया और गले लग गया।

कलकत्ता के प्रसिद्ध मौलवी लियाकत हुसैन 60 साल के थे और नेतागिरी में उनका बड़ा नाम था। नेतागिरी से उनको जो खुशियाँ मिलती थी, उनसे वे 60 साल के होते हुए भी चलने, बोलने और काम करने में जवानों को भी पीछे कर देते थे।

मौलवी लियाकत हुसैन ने केशवराव को एक सभा में देखा। उस सभा में किसी ने भाषण में लोकमान्य तिलक के लिए कुछ हलके शब्दों का उपयोग किया। देशभक्ति से भरे हुए लोकमान्य तिलक के लिए हलके शब्द बोलने और भारतीय संस्कृति को वन्दे मातरम् कर के निहारनेवालो लोगों को खरी-खोटी सुनाने की जब उसने बदतमीजी की तो युवक केशव उठा, मंच पर पहुँचा और उस वक्ता का कान पकड़ कर उसके गाल पर तीन तमाचे जड़ दिय।

आयोजक तथा उनके आदमी आये और केशव का हाथ पकड़ने लगे। केशव ने हाथ पकड़ने वाले को भी तमाचे जड़ दिये। केशव का यह शौर्य, देशभक्ति और आत्मनिर्भरता देखकर मौलवी लियाकत हुसैन बोल उठेः

"आफरीन है, आफरीन है ! भारत के लाल ! आफरीन है।"

लियाकत हुसैन दौड़ पड़े और केशव को गले लगा लिया, फिर बोलेः "आज से आप और हम जिगरी दोस्त ! मेरा कोई भी कार्यक्रम होगा, उसमें मैं आपको बुलाऊँ तो क्या आप आयेंगे?"

केशवः "क्यों नहीं भैया ! हम सब भारतवासी हैं।"

जब भी लियाकत हुसैन कार्यक्रम करते, तब केशव को अवश्य बुलाते और केशव अपने साथियों सहित भगवा ध्वज लेकर उनके कार्यक्रम में जाते। वहाँ वन्दे मातरम् की ध्वनि से आकाश गूँज उठता था।

यह साहसी, वीर, निडर, धैर्यवान और बुद्धिमान बालक केशव और कोई नहीं, केशवराव बलिराम हेडगेवार ही थे, जिन्होंने आगे चलकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आर.एस.एस.) की स्थापना की, जिनके संस्कार आज दुनियाभर के बच्चों और जवानों के दिल तक पहुँच रहे हैं।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

भाई मतिदास की धर्मनिष्ठा

औरंगजेब ने पूछाः "मतिदास कौन है?"....तो भाई मतिदास ने आगे बढ़कर कहाः "मैं हूँ मतिदास। यदि गुरुजी आज्ञा दें तो मैं यहाँ बैठे-बैठे दिल्ली और लाहौर का सभी हाल बता सकता हूँ। तेरे किले की ईंट-से-ईंट बजा सकता हूँ।"

औरंगजेब गुर्राया और उसने भाई मतिदास को धर्म-परिवर्तन करने के लिए विवश करने के उद्देश्य से अनेक प्रकार की यातनाएँ देने की धमकी दी। खौलते हुए गरम तेल के कड़ाहे दिखाकर उनके मन में भय उत्पन्न करने का प्रयत्न किया, परंतु धर्मवीर पुरुष अपने प्राणों की चिन्ता नहीं किया करते। धर्म के लिए वे अपना जीवन उत्सर्ग कर देना श्रेष्ठ समझते हैं।

जब औरंगजेब की सभी धमकियाँ बेकार गयीं, सभी प्रयत्न असफल रहे, तो वह चिढ़ गया। उसने काजी को बुलाकर पूछाः

"बताओ इसे क्या सजा दी जाये?"

काजी ने कुरान की आयतों का हवाला देकर हुक्म सुनाया कि 'इस काफिर को इस्लाम ग्रहण न करने के आरोप में आरे से लकड़ी की तरह चीर दिया जाये।'

औरंगजेब ने सिपाहियों को काजी के आदेश का पालन करने का हुक्म जारी कर दिया।

दिल्ली के चाँदनी चौक में भाई मतिदास को दो खंभों के बीच रस्सों से कसकर बाँध दिया गया और सिपाहियों ने ऊपर से आरे के द्वारा उन्हें चीरना प्रारंभ किया। किंतु उन्होंने 'सी' तक नहीं की। औरंगजेब ने पाँच मिनट बाद फिर कहाः "अभी भी समय है। यदि तुम इस्लाम कबूल कर लो, तो तुम्हें छोड़ दिया जायेगा और धन-दौलत से मालामाल कर दिया जायेगा।" वीर मतिदास ने निर्भय होकर कहाः

"मैं जीते जी अपना धर्म नहीं छोड़ूँगा।"

ऐसे थे धर्मवीर मतिदास ! जहाँ आरे से चिरवाया गया, आज वह चौक 'भाई मतिदास चौक' के नाम से प्रसिद्ध है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

स्वधर्मे निधनं श्रेयः......

प्रत्येक मनुष्य को अपने धर्म के प्रति श्रद्धा और आदर होना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण ने भी कहा हैः

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।

'अच्छी प्रकार आचरण में लाये हुए दूसरे के धर्म से गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म में तो मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म भय को देने वाला है।'

(गीताः 3.35)

जब भारत पर मुगलों का शासन था, तब की यह घटित घटना हैः ने मिलकर उसे गालियाँ दीं। पहले तो वह चुप रहा। वैसे भी सहनशीलता तो हिन्दुओं का गुण है ही... किंतु जब उन उदंड बच्चों ने गुरुओं के नाम की और झूलेलाल व गुरुनानक के नाम की गालियाँ देनी शुरु कीं, तब उस वीर बालक से अपने गुरु और धर्म का अपमान से सहा नहीं गया।

हकीकत राय ने कहाः "अब हद हो गयी ! अपने लिए तो मैंने सहनशक्ति को उपयोग किया लेकिन मेरे धर्म, गुरु और भगवान के लिए एक भी शब्द बोलोगे तो यह मेरी सहनशक्ति से बाहर की बात है। मेरे पास भी जुबान है। मैं भी तुम्हें बोल सकता हूँ।"

उद्दंड बच्चों ने कहाः "बोलकर तो दिखा ! हम तेरी खबर ले लेंगे।"

हकीकत राय ने भी उनको दो-चार कटु शब्द सुना दिये। बस, उन्हीं दो-चार शब्दों को सुनकर मुल्ला-मौलवियों को खून उबल पड़ा। वे हकीकत राय को ठीक करने का मौका ढूँढने लगे। सब लोग एक तरफ और हकीकत राय अकेला दूसरा तरफ।

उस समय मुगलों का ही शासन था, इसलिए एकत्रित राय को जेल में कैद कर दिया गया।

मुगल शासकों की ओर हकीकत राय को यह फरमान भेजा गया कि 'अगर तुम कलमा पढ़ लो और मुसलमान बन जाओ तो तुम्हें अभी माफ कर दिया जायेगा और यदि तुम मुसलमान नहीं बनोगे तो तुम्हारा सिर धड़ से अलग कर दिया जायेगा।'

हकीकत राय के माता-पिता जेल के बाहर आँसू बहा रहे थेः "बेटा ! तू मुसलमान बन जा। कम से कम हम तुम्हें जीवित तो देख सकेंगे !" .....लेकिन उस बुद्धिमान सिंधी बालक ने कहाः

"क्या मुसलमान बन जाने के बाद मेरी मृत्यु नहीं होगी?"

माता-पिताः "मृत्यु तो होगी ही।"

हकीकत रायः ".... तो फिर मैं अपने धर्म में ही मरना पसंद करुँगा। मैं जीते जी दूसरों का धर्म स्वीकार नहीं करूँगा।"

क्रूर शासकों ने हकीकत राय की दृढ़ता देखकर अनेकों धमकियाँ दीं लेकिन उस बहादुर किशोर पर उनकी धमकियों का जोर न चल सका। उसके दृढ़ निश्चय को पूरा राज्य-शासन भी न डिगा सका।

अंत में मुगल शासक ने उसे प्रलोभन देकर अपनी ओर खींचना चाहा लेकिन वह बुद्धिमान व वीर किशोर प्रलोभनों में भी नहीं फँसा।

आखिर क्रूर मुसलमान शासकों ने आदेश दिया कि 'अमुक दिन बीच मैदान में हकीकत राय का शिरोच्छेद किया जायेगा।'

उस वीर हकीकत राय ने गुरु का मंत्र ले रखा था। गुरुमंत्र जपते-जपते उसकी बुद्धि सूक्ष्म हो गयी थी वह 14 वर्षीय किशोर जल्लाद के हाथ में चमचमाती हुई तलवार देखकर जरा भी भयभीत न हुआ वरन् अपने गुरु के दिये हुए ज्ञान को याद करने लगे कि 'यह तलवार किसको मारेगी? मार-मारकर इस पाँचभौतिक शरीर को ही तो मारेंगी और ऐसे पंचभौतिक शरीर तो कई बार मिले और कई बार मर गये। ....तो क्या यह तलवार मुझे मारेगी? नहीं मैं तो अमर आत्मा हूँ... परमात्मा का सनातन अंश हूँ। मुझे यह कैसे मार सकती है? ॐ....ॐ....ॐ...

हकीकत राय गुरु के इस ज्ञान का चिन्तन कर रहा था, तभी क्रूर काजियों ने जल्लाद को तलवार चलाने का आदेश दिया। जल्लाद ने तलवार उठायी लेकिन उस निर्दोष बालक को देखकर उसकी अंतरात्मा थरथरा उठी। उसके हाथों से तलवार गिर पड़ी और हाथ काँपने लगे।

काजी बोलेः "तुझे नौकरी करनी है कि नहीं? यह तू क्या कर रहा है?"

तब हकीकत राय ने अपने हाथों से तलवार उठायी और जल्लाद के हाथ में थमा दी। फिर वह किशोर आँखें बंद करके परमात्मा का चिन्तन करने लगाः 'हे अकाल पुरुष ! जैसे साँप केंचुली का त्याग करता है, वैसे ही मैं यह नश्वर देह छोड़ रहा हूँ। मुझे तेरे चरणों की प्रीति देना ताकि मैं तेरे चरणों में पहुँच जाऊँ.... फिर से मुझे वासना का पुतला बनकर इधर-उधर न भटकना पड़े.... अब तू मुझे अपनी ही शरण में रखना.... मैं तेरा हूँ... तू मेरा है.... हे मेरे अकाल पुरुष !'

इतने में जल्लाद ने तलवार चलायी और हकीकत राय का सिर धड़ से अलग हो गया।

हकीकत राय ने 14 वर्ष की छोटी सी उम्र में धर्म के लिए अपनी कुर्बानी दे दी। उसने शरीर छोड़ दिया लेकिन धर्म न छोड़ा।

गुरु तेगबहादुर बोलिया,
सुनो सिखो ! बड़भागिया, धड़ दीजे धरम न छोड़िये....

हकीकत राय ने अपने जीवन में यह वचन चरितार्थ करके दिखा दिया।

हकीकत राय तो धर्म के लिए बलिवेदी पर चढ़ गया लेकिन उसकी कुर्बानी ने समाज क हजारों-लाखों जवानों में एक जोश भर दिया कि 'धर्म की खातिर प्राण देने पड़े तो देंगे लेकिन विधर्मियों के आगे कभी नहीं झुकेंगे। अपने धर्म में भले भूखे मारना पड़े तो भी स्वीकार है लेकिन परधर्म की सभी स्वीकार नहीं करेंगे।'

ऐसे वीरों के बलिदान के फलस्वरूप ही हमें आजादी प्राप्त हुई है और ऐसे लाखों-लाखों प्राणों की आहुति द्वारा प्राप्त की गयी इस आजादी को हम कहाँ व्यसन, फैशन और चलचित्रों से प्रभावित होकर गँवा न दें ! अब देशवासियों को सावधान रहना होगा।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

धर्म के लिए बलिदान देने वाले चार अमर शहीद

धन्य है पंजाब की माटी जहाँ समय-समय पर अनेक महापुरुषों का प्रादुर्भाव हुआ ! धर्म की पवित्र यज्ञवेदी में बलिदान देने वालों की परंपरा में गुरु गोविंदसिंह के चार लाडलों को, अमर शहीदों को भारत भूल सकता है? नहीं, कदापि नहीं। अपने पितामह गुरु तेगबहादुर की कुर्बानी और भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत पिता गुरु गोविन्दसिंह ही उनके आदर्श थे। तभी तो 8-10 वर्ष की छोटी सी अवस्था में उनकी वीरता र धर्मपरायणता को देखकर भारतवासी उनके लिए श्रद्धा से नतमस्तक हो उठते हैं।

गुरुगोविंदसिंह की बढ़ती हुई शक्ति और शूरता को देखकर औरंगजेब झुँझलाया हुआ था। उसने शाही फरमान निकाला कि 'पंजाब के सभी सूबों के हाकिम और सरदार तथा पहाड़ी राजा मिलकर आनंदपुर को बरबाद कर डालो और गुरु गोविंदसिंह को जिंदा गिरफ्तार करो या उनका सिर काटकर शाही दरबार में हाजिर करो।'

बस फिर क्या था? मुगल सेना द्वारा आनंदपुर पर आक्रमण कर दिया गया। आनंदपुर के किले में रहते हुए मुट्ठीभर सिक्ख सरदारों की सेना ने विशाल मुगल सेना को भी त्रस्त कर दिया। किंतु धीरे-धीरे रसद-सामान घटने लगा और सिक्ख सेना भूख से व्याकुल हो उठी। आखिरकार अपने साथियों के विचार से बाध्य होकर अनुकूल अवसर पाकर गुरुगोविंदसिंह ने आधी रात में सपरिवार किला छोड़ दिया।

.....किंतु न जाने कहाँ से यवनों को इसकी भनक मिल गयी और दोनों सेनाओं में हलचल मच गयी। इसी भागदौड़ में गुरु गोविन्दसिंह के परिवार वाले अलग होकर भटक गये। गुरु गोविंदसिंह की माता अपने दो छोटे-छोटे पौत्रों, जोरावरसिंह और फतेहसिंह के साथ दूसरी ओर निकल पड़ी। उनके साथ रहने वाले रसोइये के विश्वासघात के कारण ये लोग विपक्षियों द्वारा गिरफ्तार किये गये और सूबा सरहिंद के पास भेज दिये गये। सूबेदार ने गुरु गोविन्दसिंह के हृदय पर आघात पहुँचाने के ख्याल से उनके दोनों छोटे बच्चों को मुसलमान बनाने का निश्चय किया।

भरे दरबार में गुरु गोविन्दसिंह के इन दोनों पुत्रों से सूबेदार ने पूछाः "ऐ बच्चो ! तुम लोगों को दीन(मजहब) इस्लाम की गोद में आना मंजूर है या कत्ल होना?"

दो-तीन बार पूछने पर जोरावरसिंह ने जवाब दियाः

"हमें कत्ल होना मंजूर है।"

कैसी दिलेरी है ! कितनी निर्भीकता ! जिस उम्र में बच्चे खिलौनों से खेलते रहते हैं, उस नन्हीं सी सुकुमार अवस्था में भी धर्म के प्रति इन बालकों की कितनी निष्ठा है !

वजीद खाँ बोलाः "बच्चो ! दीन इस्लाम में आकर सुख से जीवन व्यतीत करो। अभी तो तुम्हारा फलने-फूलने का समय है। मृत्यु से भी इस्लाम धर्म को बुरा समझते हो? जरा सोचो ! अपनी जिंदगी व्यर्थ क्यों गँवा रहे हो?"

गुरु गोविंदसिंह के लाडले वे वीर पुत्र... मानो गीता के इस ज्ञान को उन्होंने पूरी तरह आत्मसात् कर लिया थाः **स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।** जोरावरसिंह ने कहाः "हिन्दू धर्म से बढ़कर संसार में कोई धर्म नहीं। अपने धर्म पर अडिग रहकर मरने से बढ़कर सुख देने वाला दुनिया में कोई काम नहीं। अपने धर्म की मर्यादा पर मिटना तो हमारे कुल की रीति है। हम लोग स क्षणभंगुर जीवन की परवाह नहीं करते। मर-मिटकर भी धर्म की रक्षा करना ही हमारा अंतिम ध्येय है। चाहे तुम कत्ल करो या तुम्हारी जो इच्छा हो, करो।"

गुरु गोविन्दसिंह के पुत्र महान,
न छोड़ा धर्म हुए कुर्बान.........

इसी प्रकार फतेहसिंह ने भी धर्म को न त्यागकर बड़ी निर्भीकतापूर्वक मृत्यु का वरण श्रेयस्कर समझा। शाही सल्तनत आश्चर्यचकित हो उठी कि 'इस नन्हीं-सी आयु में भी अपने धर्म के प्रति कितनी अडिगता है ! इन नन्हें-नन्हें सुकुमार बालकों में कितनी निर्भीकता है !' किंतु अन्यायी शासक को भला यह कैसे सहन होता? काजियों और मुल्लाओं की राय से इन्हें जीते-जी दीवार में चिनवाने का फरमान जारी कर दिया गया।

कुछ ही दूरी पर दोनों भाई दीवार में चिने जाने लगे तब धर्मांध सूबेदार ने कहाः "ऐ बालको ! अभी भी चाहो तो तुम्हारे प्राण बच सकते हैं। तुम लोग कलमा पढ़कर मुसलमान धर्म स्वीकार कर लो। मैं तुम्हें नेक सलाह देता हूँ।"

यह सुनकर वीर जोरावरसिंह गरज उठाः "अरे अत्याचारी नराधम ! तू क्या बकता है? मुझे तो खुशी है कि पंचम गुरु अर्जुन देव और दादागुरु तेगबहादुर के आदर्शों को कायम करने के लिए मैं अपनी कुर्बानी दे रहा हूँ तेरे जैसे अत्याचारियों से यह धर्म मिटनेवाला नहीं, बल्कि हमारे खून से वह सींचा जा रहा है और आत्मा तो अगर है, इसे कौन मार सकता है?"

दीवार शरीर को ढकती हुई ऊपर बढ़ती जा रही थी। छोटे भाई फतेहसिंह की गर्दन तक दीवार आ गयी थी। वह पहले ही आँखों से ओझल हो जाने वाला था। यह देखकर जोरावरसिंह की आँखों में आँसू आ गये। सूबेदार को लगा कि अब मुलजिम मृत्यु से भयभीत हो रहा है। अतः मन ही मन प्रसन्न होकर बोलाः "जोरावर ! अब भी बता दो तुम्हारी क्या इच्छा है? रोने से क्या लाभ होगा?"

जोरावर सिंहः "मैं बड़ा अभागा हूँ कि अपने छोटे भाई से पहले मैंने जन्म धारण किया, माता का दूध और जन्मभूमि का अन्न जल ग्रहण किया, धर्म की शिक्षा पायी किंतु धर्म के निमित्त जीवन-दान देने का सौभाग्य मुझसे पहले मेरे छोटे भाई फतेह को प्राप्त हो रहा है। मुझसे पहले मेरा छोटा भाई कुर्बानी दे रहा है, इसीलिए मुझ आज खेद हो रहा है।"

लोग दंग रह गये कि कितने साहसी हैं ये बालक ! जो प्रलोभन दिये जाने और जुल्मियों द्वारा अत्याचार किये जाने पर भी वीरतापूर्वक स्वधर्म में डटे रहे।

उधर गुरु गोविंदसिंह की पूरी सेना युद्ध में काम आ गयी। यह देखकर उनके बड़े पुत्र अजीतसिंह से नहीं रहा गया और वे पिता के पास आकर बोल उठेः

"पिताजी ! जीते जी बंदी होना कायरता है और भागना बुजदिली है। इनसे अच्छा है लड़कर मरना। आप आज्ञा करें, मैं इन यवनों के छक्के छुड़ा दूँगा या मृत्यु का आलिंगन करूँगा।"

वीर पुत्र अजीतसिंह की बात सुनकर गोविंदसिंह का हृदय प्रसन्न हो उठा और वे बोलेः

"शाबाश ! धन्य हो पुत्र ! जाओ, स्वदेश और स्वधर्म के निमित्त अपना कर्तव्यपालन करो। हिन्दू धर्म को तुम्हारे जैसे वीर बालकों की कुर्बानी की आवश्यकता है।"

पिता से आज्ञा पाकर अत्यंत प्रसन्नता तथा जोश के साथ अजीतसिंह आठ-दस सिक्खों के साथ युद्ध स्थल में जा धमका और देखते ही देखते यवन सेना के बड़े-बड़े सरदारों को मौत के घाट उतारते हुए खुद भी शहीद हो गया।

ऐसे वीर बालकों की गाथा से ही भारतीय इतिहास अमर हो रहा है। अपने बड़े भाइयों को वीरगति प्राप्त करते देखकर उनसे छोटा भाई जुझारसिंह भला कैसे चुप बैठता? वह भी अपने पिता गुरु गोविंदसिंह के पास जा पहुँचा और बोलाः

"पिताजी ! बड़े भैया तो वीरगति को प्राप्त हो गये, इसलिए मुझे भी भैया का अनुगामी बनने की आज्ञा दीजिए।"

गुरु गोविन्दसिंह का हृदय भर आया और उन्होंने उठकर जुझार को गले लगा लिया। वे बोलेः "जाओ, बेटा ! तुम भी अमरपद प्राप्त करो, देवता तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं।"

धन्य है पुत्र की वीरता और धन्य है पिता की कुर्बानी ! अपने तीन पुत्रों की मृत्यु के पश्चात् स्वदेश तथा स्वधर्म पालन के निमित्त अपने चौथे और अंतिम पुत्र को भी प्रसन्नता से धर्म और स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर चढ़ने के निमित्त स्वीकृति प्रदान कर दी !

वीर जुझारसिंह 'सत् श्री अकाल' कहकर उछल पड़ा। उसका रोम-रोम शत्रु को परास्त करने के लिए फड़कने लगा। स्वयं पिता ने उसे वीरों के देश से सुसज्जित करके आशीर्वाद दिया और वीर जुझार पिता को प्रणाम करके अपने कुछ सरदार साथियों के साथ निकल पड़ा युद्धभूमि की ओर। जिस ओर जुझार गया उस ओर दुश्मनों का तीव्रता से सफाया होने लगा और ऐसा लगता मानो महाकाल की लपलपाती जिह्वा सेनाओं को चाट रही है। देखते-देखते मैदान साफ हो गया। अंत में शत्रुओं से जूझते-जूझते वह वीर बालक भी मृत्यु की भेंट चढ़ गया। देखनेवाले दुश्मन भी उसकी प्रशंसा किये बिना न रह सके।

धन्य है यह देश ! धन्य हैं वे माता-पिता जिन्होंने इन चार पुत्ररत्नों को जन्म दिया और धन्य हैं वे चारों वीर पुत्र जिन्होंने देश, धर्म और संस्कृति के रक्षणार्थ अपने प्राणों तक का उत्सर्ग कर दिया।

चाहे कितनी भी विकट परिस्थिति हो अथवा चाहे कितनी भी बड़े-बड़े प्रलोभन आयें, किंतु वीर वही है जो अपने धर्म तथा देश की रक्षा के लिए उनकी परवाह न करते हुए अपने प्राणों की भी बाजी लगा दें। वही वास्तव में मनुष्य कहलाने योग्य है। किसी ने सच कहा हैः

जिसको नहीं निज देश पर निज जाति पर अभिमान है।

वह नर नहीं पर पशु निरा और मृतक समान है।।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

अमर शहीद गुरु तेगबहादुरजी

धर्म, देश के हित में जिसने पूरा जीवन लगा दिया।

इस दुनिया में उसी मनुज ने नर तन को सार्थक किया।।

हिन्दस्तान में औरंगजेब का शासनकाल था। किसी इतिहासकार ने लिखा हैः

'औरंगजेब ने यह हुक्म दिया कि किसी हिन्दू को राज्य के कार्य में किसी उच्च स्थान पर नियत न किया जाये तथा हिन्दुओं पर जजिया (कर) लगा दिया जाय। उस समय अनेकों नये कर केवल हिन्दुओं पर लगाये गये। इस भय से अनेकों हिन्दू मुसलमान हो गये। हिन्दुओं के पूजा-आरती आदि सभी धार्मिक कार्य बंद होने लगे। मंदिर गिराये गये, मसजिदें बनवायी गयीं और अनेकों धर्मात्मा मरवा दिये गये। उसी समय की उक्ति है कि 'सवा मन यज्ञोपवीत रोजाना उतरवा कर औरंगजेब रोटी खाता था....'

उसी समय कश्मीर के कुछ पंडितों ने आकर गुरु तेगबहादुरजी से हिन्दुओं पर हो रहे अत्याचार का वर्णन किया। तब गुरु तेगबहादुरजी का हृदय द्रवीभूत हो उठा और वे बोलेः

"जाओ, तुम लोग बादशाह से कहो कि हमारा पीर तेगबहादुर है। यदि वह मुसलमान हो जाये तो हम सभी इस्लाम स्वीकार कर लेंगे।"

पंडितों ने वैसा की किया जैसा कि श्री तेगबहादुरजी ने कहा था। तब बादशाह औरंगजेब ने तेगबहादुरजी को दिल्ली आने का बुलावा भेजा। जब उनके शिष्य मतिदास और दयाला औरंगजेब के पास पहुँचे तब औरंगजेब ने कहाः

"यदि तुम लोग इस्लाम धर्म कबूल नहीं करोगे तो कत्ल कर दिये जाओगे।"

मतिदासः "शरीर तो नश्वर है और आत्मा का कभी कत्ल नहीं हो सकता।"

तब औरंगजेब ने क्रोधित होकर मतिदास को आरे से चिरवा दिया। यह देखकर दयाला बोलाः

"औरंगजेब ! तूने बाबर वंश को और अपनी बादशाहियत को चिरवाया है।"

यह सुनकर औरंगजेब ने दयाला को जिंदा ही जला दिया।

औरंगजेब के अत्याचार का अंत नहीं आ रहा था। फिर गुरुतेगबहादुरजी स्वयं गये। उनसे भी औरंगजेब ने कहाः

"यदि तुम मुसलमान होना स्वीकार नहीं करोगे तो कल तुम्हारी भी यही दशा होगी।"

दूसरे दिन (मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी को) बीच चौराहे पर तेगबहादुरजी का सिर धड़ से अलग कर दिया गया। धर्म के लिए एक संत कुर्बान हो गये। तेगबहादुरजी के बलिदान ने जनता में रोष पैदा कर दिया। अतः लोगों में बदला लेने की धुन सवार हो गयी। अनेकों शूरवीर धर्म के ऊपर न्योछावर होने को तैयार होने लगे। तेग बहादुरजी के बलिदान ने समय को ही बदल दिया। ऐसे शूरवीरों का, धर्मप्रेमियों का बलिदान ही भारत को दासता की जंजीरी से मुक्त करा सका है।

देश तो मुक्त हुआ किंतु क्या मानव की वास्तविक मुक्ति हुई? नहीं। विषय-विकार, ऐश-आराम और भोग-विलासरूपी दासता से अभी भी वह आबद्ध ही है और इस दासता से मुक्ति तभी मिल सकती है जब संत महापुरुषों की शरण में जाकर उनके बताये मार्ग पर चलकर मुक्ति पथ का पथिक बना जाय। तभी मानव-जीवन सार्थक हो सकेगा।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

धन छोड़ा पर धर्म न छोड़ा.....

बंगाल के माल्दा जिले के केन्दूरपुर नामक गाँव में एक नुमाई नाम का बालक था जो बाद में एक अच्छे स्वयंसेवक के रूप में प्रसिद्ध हुआ। उसे बचपन में एक बार जोरदार बुखार आ गया और पैर में चोट लग गयी। अनेकों छोटे-मोटे इलाज करने पर बुखार तो मिट गया, किंतु घाव मिटने का नाम नहीं ले रहा था।

आखिरकार थककर किसी की सलाह से उसे बड़े अस्पताल में भर्ती कर दिया गया। वह अस्पताल ईसाई मिशनरी का था, अतः वहाँ उसके घाव को भरने के साथ-साथ नुमाई में ईसाइयत के संस्कार भरने का भी प्रयास किया जाने लगा। छोटे-से घाव को भरने के लिए उसे 5-6 महीने तक अस्पताल में रखा ताकि धीरे-धीरे उसका हृदय ईसाइयत के संस्कारों से भर जाये।

लेकिन वह बालक नुमाई अपने धर्म पर अडिग रहा और बोलाः "मैं हिन्दू हूँ और हिन्दू ही रहूँगा। तुम्हारे चक्कर में आकर मैं ईसाई बनने वाला नहीं हूँ।"

अंतिम प्रयास करते हुए ईसाई मिशनरीवालों ने उसके गरीब पिता से कहाः "इसके घाव भरने में 6 हजार रूपये खर्च हो गये हैं। तुम अपने लड़के से कह दो कि वह ईसाइयत स्वीकार कर ले। अगर वह ईसाइयत स्वीकार कर लेगा तो 6 हजार रुपये माफ हो जायेंगे, नहीं तो तुम्हें वे रुपये भरने पड़ेंगे जबकि तुम तो गरीब हो। तुम्हारे पास केवल 12 बीघा जमीन है। (उस समय एक बीघा जमीन की कीमत एक हजार रुपये थी।) या तो तुम 6 बीघा जमीन दे दो जो कि तुम्हारा भरण-पोषण का एक मात्र आधार है या नुमाई को ईसाइयत स्वीकार करने के लिए राजी कर लो।"

तब पिता बोलाः "मैं धन का गरीब हूँ लेकिन धर्म का नहीं। धर्म बेचने के लिए नहीं होता। मैं 6 बीघा जमीन बेचकर भी 6 हजार रुपये तुम्हें दे दूँगा।"

उस गरीब पिता ने 6 बीघा जमीन बेचकर रुपये दे दिये, किंतु धर्म नहीं बेचा। उस बालक ने हिन्दू रहकर ही अपना पूरा जीवन ईश्वर के रास्ते लगा दिया। कितनी निष्ठा है स्वधर्म में !

कभी भी अपने धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए वरन् अपने ही धर्म में अडिग रहकर, अपने धर्म का पालन करते हुए अपने धर्म और अपनी संस्कृति के गौरव की रक्षा करनी चाहिए। इसी में हमारा कल्याण है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

स्वधर्मनिष्ठा

गीता में कहा गया हैः

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

'अपने धर्म में मर जाना भी श्रेयस्कर है किंतु दूसरे का धर्म भयावह है।' **(गीताः 3.35)**

किसी को धर्मच्युत करने की चाहे कोई लाख कोशिश क्यों न करें, यदि वह बुद्धिमान होगा तो न तो किसी के प्रलोभन में आयेगा न ही भय में, वह तो हर कीमत पर अपने ही धर्म में अडिग रहेगा।

ईसाइयत वाले गाँव-गाँव जाकर प्रचार करते हैं कि 'हमारे धर्म में आ जाओ। हम तुमको मुक्ति दिलायेंगे।'

एक समझदार वृद्ध सज्जन ने उन्हें पूछाः

"मुक्ति कौन देगा?"

"यीशु भगवान देंगे।"

"यीशु भगवान कौन हैं?"

"वे भगवान के बेटे हैं।"

तब उस वृद्ध सज्जन ने कहाः "हम तो सीधे भगवान का ज्ञान पा रहे हैं, फिर भगवान के बेटे के पास क्यों जायें? भगवान के बेटे मुक्ति क्यों माँगे?"

इतना ज्ञान तो भारत का एक ग्रामीण किसान भी रखता है कि भगवान के बेटे से क्या मुक्ति माँगनी? जिस बेटे को खीलें लगीं और जो खून बहाते-बहाते चला गया, उससे हम मुक्ति माँगे? इससे तो जो मुक्तात्मा-परमात्मा श्रीकृष्ण विघ्न-बाधाओं के बीच भी चैन की बंसी बजा रहे हैं, जिनको देखते ह चिन्ता गायब हो जाती है और प्रेम प्रकट होने लगता है, सीधा उन्हीं से मुक्ति क्यों न ले लें? भगवान के बेटे से हमको मुक्ति नहीं चाहिए। हम तो भगवान से ही मुक्ति लेंगे। कैसी उत्तम समझ है !

ॐ

भारत का एक बालक कान्वेंट स्कूल में अपना नाम खारिज करवाकर भारतीय पद्धति से पढ़ानेवाली शाला में भर्ती हो गया। उस लड़के की दृष्टि बड़ी पैनी थी। उसने देखा कि शाला के प्रधानाचार्य कुर्ता और धोती पहन कर पाठशाला में आते हैं। अतः वह भी अपनी पाठशाला की पोशाक उतारकर धोती-कुर्ते में पाठशाला जाने लगा। उसे इस प्रकार जाते देखकर पिता ने पूछाः "बेटा ! तूने यह क्या किया?"

बालकः "पिताजी ! यह हमारी भारतीय वेशभूषा है। देश तब तक शाद-आबाद नहीं रह सकता जब तक हम अपनी संस्कृति का और अपनी वेशभूषा का आदर नहीं करते। पिता जी ! मैंने कोई गलती तो नहीं की?"

पिताजीः "बेटा ! गलती तो नहीं की लेकिन ऐसा पहन कैसे लिया?"

बालकः "पिताजी ! हमारे प्रधानाचार्य यही पोशाक पहनते हैं। टाई, शर्ट, कोट, पैन्ट आदि तो ठण्डे प्रदेशों की आवश्यकता है। हमारा प्रदेश तो गरम है। हमारी वेशभूषा तो ढीली-ढाली ही होनी चाहिए। यह वेशभूषा स्वास्थ्यप्रद भी है और हमारी संस्कृति की पहचान भी।"

पिता ने बालक को गले लगाया और कहाः

"बेटा ! तू बड़ा होन हार है। किसी के विचारों से तू दबना नहीं। अपने विचारों को बुलंद रखना। बेटा ! तेरी जय-जयकार होगी।"

पाठशाला में पहुँचने पर अन्य विद्यार्थी उसे देखकर दंग रह गये कि यह क्या ! जब उस बालक से पूछा गया कि 'तू पाठशाला की पोशाक पहनकर क्यों नहीं आया?' तब उसने कहाः

"पाश्चात्य देशों में ठण्डी रहती है, अतः वहाँ शर्ट-पैन्ट आदि की जरूरत पड़ती है। ठण्डी हवा शरीर में घुसकर सर्दी न कर दे, इसलिए वहाँ के लोग टाई बाँधते हैं। हमारे देश में तो गर्मी है। फिर हम उनके पोशाक की नकल क्यों करें? जब हमारी पाठशाला के प्रधानाचार्य भारतीय पोशाक पहन सकते हैं तो भारतीय विद्यार्थी क्यों नहीं पहन सकते?"

उस बालक ने अन्य विद्यार्थियों को भी अपनी संस्कृति के प्रति प्रोत्साहित किया। उसने देखा कि कान्वेंट स्कूल में पादरी लोग हिन्दू धर्म की निन्दा करते हैं और माता-पिता की

अवहेलना करना सिखाते हैं। हमारे शास्त्र कहते हैं- 'मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।' ....और अमेरिका में कहते हैं कि 'माँ या बाप डाँट दे तो पुलिस को खबर कर दो।' जो शिक्षा माता-पिता को भी दंडित करने की सीख दे, ऐसी शिक्षा हम क्यों पायें? हम तो भारतीय पद्धति से शिक्षा देनेवाली पाठशाला में ही पढ़ेंगे।' ऐसा सोचकर उस बालक ने कान्वेंट स्कूल से अपना नाम कटवाकर भारतीय शिक्षा पद्धतिवाली पाठशाला में दर्ज करवाया था।

इतनी छोटी सी उम्र में भी अपने राष्ट्र का, अपने धर्म का तथा अपनी संस्कृति का आदर करने वाले वे बालक थे सुभाषचंद्र बोस।

ॐ

एक पादरी किसी कान्वेंट स्कूल में विद्यार्थियों के आगे हिन्दू धर्म की निन्दा कर रहा था और अपनी ईसाइयत की डींग हाँक रहा था। इतने में एक हिम्मतवान लड़का उठ खड़ा हुआ और पादरी को भी तौबा पुकारनी पड़े, ऐसा सवाल किया। लड़के ने कहाः "पादरी महोदय ! क्या आपका ईसाई धर्म हिन्दू धर्म की निन्दा करना सिखाता है?"

पादरी निरुत्तर हो गया, फिर थोड़ी देर बाद कूटनीति से बोलाः

"तुम्हारा धर्म भी तो निन्दा करता है।"

उस लड़के ने कहाः "हमारे धर्मग्रन्थ में कहाँ किसी धर्म की निंदा की गयी है? गीता में तो आता हैः न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। 'इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसंदेह कुछ भी नहीं है।'

(गीताः4.38)

गीता के एक-एक शब्द में मानवमात्र का उत्थान करने का सामर्थ्य छुपा हुआ है। ऐसा ज्ञान देनेवाली गीता में कहाँ किसी के धर्म की निन्दा की गयी है? हमारे एक अन्य धर्म ग्रंथ – रचयिता भगवान वेदव्यासजी का श्लोक भी सुन लोः

धर्मं यो बाधते न स धर्मः कुवर्त्म तत्।
अविरोधाद् यो धर्मः स धर्मः सत्य विक्रम।।

हे विक्रम ! जो धर्म किसी दूसरे धर्म का विरोध करता है, वह धर्म नहीं कुमार्ग है। धर्म वही है जिसका किसी धर्म से विरोध नहीं है।

पादरी निरुत्तर हो गया।

वही 10-11 साल का लड़का आगे चलकर गीता, रामायण, उपनिषद् आदि ग्रंथों का अध्ययन करके एक प्रसिद्ध धुरंधर दार्शनिक बना और भारत के राष्ट्रपति पद पर शोभायमान हुआ। उसका नाम था डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्।

कैसी हिम्मत और कैसा साहस था भारत के उन नन्हें-नन्हें बच्चों में ! उनके साहस, स्वाभिमान और स्वधर्म-प्रीति ने ही आगे चलकर उन्हें भारत का प्रसिद्ध नेता व दार्शनिक बना दिया।

जो धर्म की रक्षा करते हैं, धर्म उनकी रक्षा अवश्य करता है। उठो, जागो, भारतवासियो ! विधर्मियों की कुचालों और षडयंत्रों के कारण फिर से पराधीन होना पड़े इससे पहले ही अपनी संस्कृति के गौरव को पहचानो। अपने राष्ट्र की अस्मिता की रक्षा के लिए कमर कसकर तैयार हो जाओ। अब भी वक्त है..... फिर कहीं पछताना न पड़े। भगवान और भगवत्प्राप्त संतों की कृपा तुम्हारे साथ है फिर भय किस बात का? देर किस बात की? शाबाश, वीर ! शाबाश...!!

ॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

छत्रसाल की वीरता

बात उस समय की है, जब दिल्ली के सिंहासन पर औरंगजेब बैठ चुका था।

विंध्यवासिनी देवी के मंदिर में मेला लगा हुआ था, जहाँ उनके दर्शन हेतु लोगों की खूब भीड़ जमी थी। पन्नानरेश छत्रसाल उस वक्त 13-14 साल के किशोर थे। छत्रसाल ने सोचा कि 'जंगल से फूल तोड़कर फिर माता के दर्शन के लिए जाऊँ।' उनके साथ हम उम्र के दूसरे राजपूत बालक भी थे। जब वे जंगल में फूल तोड़ रहे थे, उसी समय छः मुसलमान सैनिक घोड़े पर सवार होकर वहाँ आये और उन्होंने पूछाः "ऐ लड़के ! विंध्यवासिनी का मंदिर कहाँ है?"

छत्रसालः "भाग्यशाली हो, माता का दर्शन करने के लिए जा रहे हो। सीधे... सामने जो टीला दिख रहा है, वहीं मंदिर है।"

सैनिकः "हम माता के दर्शन करने नहीं जा रहे, हम तो मंदिर को तोड़ने के लिए जा रहे हैं।"

छत्रसाल ने फूलों की डलिया एक दूसरे बालक को पकड़ायी और गरज उठाः "मेरे जीवित रहते हुए तुम लोग मेरी माता का मंदिर तोड़ोगे?"

सैनिकः "लड़के तू क्या कर लेगा? तेरी छोटी सी उम्र, छोटी-सी-तलवार.... तू क्या कर सकता है?"

छत्रसाल ने एक गहरा श्वास लिया और जैसे हाथियों के झुंड पर सिंह टूट पड़ता है, वैसे ही उन घुड़सवारों पर वह टूट पड़ा। छत्रसाल ने ऐसी वीरता दिखाई कि एक को मार गिराया, दूसरा बेहोश हो गया.... लोगों को पता चले उसके पहले ही आधा दर्जन सैनिकों को मार भगाया। धर्म की रक्षा के लिए अपनी जान तक की परवाह नहीं की वीर छत्रसाल ने।

भारत के ऐसे ही वीर सपूतों के लिए किसी ने कहा हैः

तुम अग्नि की भीषण लपट, जलते हुए अंगार हो।
तुम चंचला की द्युति चपल, तीखी प्रखर असिधार हो।
तुम खौलती जलनिधि-लहर, गतिमय पवन उनचास हो।

तुम राष्ट्र के इतिहास हो, तुम क्रांति की आख्यायिका।
भैरव प्रलय के गान हो, तुम इन्द्र के दुर्दम्य पवि।
तुम चिर अमर बलिदान हो, तुम कालिका के कोप हो।
पशुपति रूद्र के भ्रूलास हो, तुम राष्ट्र के इतिहास हो।

ऐसे वीर धर्मरक्षकों की दिव्य गाथा यही याद दिलाती है कि दुष्ट बनो नहीं और दुष्टों से डरो भी नहीं। जो आततायी व्यक्ति बहू-बेटियों की इज्जत से खेलता है या देश के लिए खतरा पैदा करता है, ऐसे बदमाशों का सामना साहस के साथ करना चाहिए। अपनी शक्ति जगानी चाहिए। यदि तुम धर्म और देश की रक्षा के लिए कार्य करते हो तो ईश्वर भी तुम्हारी सहायता करता है।

'हरि ॐ.. हरि ॐ... हिम्मत... साहस... ॐ...ॐ...बल... शक्ति... हरि ॐ... ॐ... ॐ...' ऐसा उच्चारण करके भी तुम अपनी सोयी हुई शक्ति को जगा सकते हो। अभी से लग जाओ अपनी सुषुप्त शक्ति को जगाने के कार्य में और प्रभु को पाने में।

ॐ

अनुक्रम

महाराणा प्रताप की महानता

बात उन दिनों की है जब भामाशाह की सहायता से राणा प्रताप पुनः सेना एकत्र करके मुगलों के छक्के छुड़ाते हुए डूंगरपुर, बाँसवाड़ा आदि स्थानों पर अपना अधिकार जमाते जा रहे थे।

एक दिन राणा प्रताप अस्वस्थ थे, उन्हें तेज ज्वर था और युद्ध का नेतृत्व उनके सुपुत्र कुँवर अमर सिंह कर रहे थे। उनकी मुठभेड़ अब्दुर्रहीम खानखाना की सेना से हुई। खानखाना और उनकी सेना जान बचाकर भाग खड़ी हुई। अमर सिंह ने बचे हुए सैनिकों तथा खानखाना परिवार की महिलाओं को वहीं कैद कर लिया। जब यह समाचार महाराणा को मिला तो वे बहुत क्रुद्ध हुए और बोलेः

"किसी स्त्री पर राजपूत हाथ उठाये, यह मैं सहन नहीं कर सकता। यह हमारे लिए डूब मरने की बात है।"

वे तेज ज्वर में ही युद्ध-भूमि के उस स्थान पर पहुँच गये जहाँ खानखाना परिवार की महिलाएँ कैद थीं।

राणा प्रताप खानखाना के बेगम से विनीत स्वर में बोलेः

"खानखाना मेरे बड़े भाई हैं। उनके रिश्ते से आप मेरी भाभी हैं। यद्यपि यह मस्तक आज तक किसी व्यक्ति के सामने नहीं झुका, परंतु मेरे पुत्र अमर सिंह ने आप लोगों को जो कैद कर

लिया और उसके इस व्यवहार से आपको जो कष्ट हुआ उसके लिए मैं माफी चाहता हूँ और आप लोगों को ससम्मान मुगल छावनी में पहुँचाने का वचन देता हूँ।"

उधर हताश-निराश खानखाना जब अकबर के पास पहुँचा तो अकबर ने व्यंग्यभरी वाणी से उसका स्वागत कियाः

"जनानखाने की युद्ध-भूमि में छोड़कर तुम लोग जान बचाकर यहाँ तक कुशलता से पहुँच गये?"

खानखाना मस्तक नीचा करके बोलेः "जहाँपनाह ! आप चाहे जितना शर्मिन्दा कर लें, परंतु राणा प्रताप के रहते वहाँ महिलाओं को कोई खतरा नहीं है।" तब तक खानखाना परिवार की महिलाएँ कुशलतापूर्वक वहाँ पहुँच गयीं।

यह दृश्य देख अकबर गंभीर स्वर में खानखाना से कहने लगाः

"राणा प्रताप ने तुम्हारे परिवार की बेगमों को यों ससम्मान पहुँचाकर तुम्हारी ही नहीं, पूरे मुगल खानदान की इज्जत को सम्मान दिया है। राणा प्रताप की महानता के आगे मेरा मस्तक झुका जा रहा है। राणा प्रताप जैसे उदार योद्धा को कोई गुलाम नहीं बना सकता।"

ॐ

अनुक्रम

साहसिक लड़का

एक लड़का काशी में हरिश्चन्द्र हाई स्कूल में पढ़ता था। उसका गाँव काशी से 8 मील दूर था। वह रोजाना वहाँ से पैदल चलकर आता, बीच में जो गंगा नदी बहती है उसे पार करता और फिर विद्यालय पहुँचता।

उस जमाने में गंगा पार करने के लिए नाववाले को दो पैसे देने पड़ते थे। दो पैसे आने के और दो पैसे जाने के, कुल चार पैसे यानी पुराना एक आना। महीने में करीब दो रुपये हुए। जब सोने के एक तोले का भाव सौ रुपयों से भी कम था तब के दो रुपये। आज के तो पाँच-पच्चीस रुपये हो जायें।

उस लड़के ने अपने माँ-बाप पर अतिरिक्त बोझा न पड़े इसलिए एक भी पैसे की माँग नहीं की। उसने तैरना सीख लिया। गर्मी हो, बारिश हो कि ठण्डी हो गंगा पार करके हाई स्कूल में जाना उसका क्रम हो गया। ऐसा करते-करते कितने ही महीने गुजर गये।

एक बार पौष मास की ठण्डी में वह लड़का सुबह की स्कूल भरने के लिए गंगा में कूदा। तैरते-तैरते मझधार में आया। एक नाव में कुछ यात्री नदी पार कर रहे थे। उन्होंने देखा कि छोटा सा लड़का अभी डूब मरेगा। वे नाव को उसके पास ले गये और हाथ पकड़कर उसे नाव में

खींच लिया। लड़के के मुख पर घबराहट या चिन्ता का कोई चिन्ह नहीं था। सब लोग दंग रह गये कि इतना छोटा है और इतना साहसी ! वे बोलेः

"तू अभी डूब मरता तो? ऐसा साहस नहीं करना चाहिए।"

तब लड़का बोलाः "साहस तो होना ही चाहिए ही। अगर अभी से साहस नहीं जुटाया तो जीवन में बड़े-बड़े कार्य कैसे कर पायेंगे?"

लोगों ने पूछाः "इस समय तैरने क्यों आये? दोपहर को नहाने आते?"

लड़का बोलता हैः "मैं नदी में नहाने के लिए नहीं आया हूँ, मैं तो स्कूल जा रहा हूँ।"

"फिर नाव में बैठकर जाते?"

"रोज के चार पैसे आने-जाने के लगते हैं। मेरे गरीब माँ-बाप पर मुझे बोझ नहीं बनना है। मुझे तो अपने पैरों पर खड़े होना है। मेरा खर्च बढ़ेगा तो मेरे माँ-बाप की चिन्ता बढ़ेगी, उन्हें घर चलाना मुश्किल हो जायेगा।"

लोग उस लड़के को आदर से देखते ही रह गये। वही साहसी लड़का आगे चलकर भारत का प्रधानमंत्री बना। वह लड़का था लाल बहादुर शास्त्री। शास्त्री जी उस पद पर भी सच्चाई, साहस, सरलता, ईमानदारी, सादगी, देशप्रेम आदि सदगुण और सदाचार के मूर्तिमन्त स्वरूप थे। ऐसे महामानव भले फिर थोड़े समय ही राज्य करें पर एक अनोखा प्रभाव छोड़ जाते हैं जनमानस पर।

ॐ

अनुक्रम

चन्द्रशेखर आजाद की दृढ़निष्ठा

महान देशभक्त, क्रांतिकारी, वीर चन्द्रशेखर आजाद बड़े ही दृढ़प्रतिज्ञ थे। उनके गले में यज्ञोपवीत, जेब में गीता और साथ में पिस्तौल रहा करती थी। वे ईश्वरपरायण, बहादुर, संयमी और सदाचारी थे।

एक बार वे अपने एक मित्र के घर ठहरे हुए थे। उनकी नवयुवती कन्या ने उन्हें कामजाल में फँसाना चाहा, आजाद ने डाँटकर कहाः 'इस बार तुम्हें क्षमा करता हूँ, भविष्य में ऐसा हुआ तो गोली से उड़ा दूँगा।' यह बात उन्होंने उसके पिता को भी बता दी और उनके यहाँ ठहरना तक बंद कर दिया।

जिन दिनों आजाद भूमिगत होकर मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए ब्रिटिश हुकूमत से संघर्ष कर रहे थे, उन दिनों उनकी माँ जगरानी देवी अत्यन्त विपन्नावस्था में रह रही थीं। तन ढँकने को एक मोटी धोती तथा पेट भरने को दो रोटी व नमक भी उन्हें उपलब्ध नहीं हो पा रहा

था। अड़ोस-पड़ोस के लोग भी उनकी मदद नहीं करते थे। उन्हें भय था कि अंग्रेज पुलिस आजाद को सहायता देने के संदेह में उनकी ताड़ना करेगी।

माँ की इस कष्टपूर्ण स्थिति का समाचार जब क्रांतिकारियों को मिला तो वे पीड़ा से तिलमिला उठे। एक क्रांतिकारी ने, जिसके पास संग्रहित धन रखा होता था, कुछ रुपये चन्द्रशेखर की माँ को भेज दिये। रुपये भेजने का समाचार जब आजाद को मिला तो वे क्रोधित हो गये और उस क्रांतिकारी की ओर पिस्तौल तानकर बोलेः 'गद्दार ! यह तूने क्या किया? यह पैसा मेरा नहीं है, राष्ट्र का है। संग्रहित धन का इस प्रकार अपव्यय कर तूने हमारी देशभक्ति को लांछित किया है। चन्द्रशेखर इसमें से एक पैसा भी व्यक्तिगत कार्यों में नहीं लगा सकता।' आजाद की यह अलौकिक प्रमाणिकता देखकर वह क्रांतिकारी दंग रह गया। अपराधी की भाँति वह नतमस्तक होकर खड़ा रहा। क्षणभर बाद आजाद पिस्तौल बगल में डालते हुए बोलेः

'आज तो छोड़ दिया, परंतु भविष्य में ऐसी भूल की पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए।'

देश के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाले चन्द्रशेखर आजाद जैसे संयमी, सदाचारी देशभक्तों के पवित्र बलिदान से ही भारत अंग्रेजी शासन की दासता से मुक्त हो पाया है।

ॐ

अनुक्रम

हजारों पर तीन सौ की विजय !

स्पार्टा एक छोटा सा टापू है। वहाँ शत्रु के हजारों सैनिकों ने एकाएक हमला कर दिया। स्पार्टा के 300 सैनिक अपने टापू की रक्षा में लगे और हजारों शत्रुओं को मार भगाया ! स्पार्टा की विजय हुई।

अन्वेषणकर्ताओं ने स्पार्टा से सैनिकों से पूछाः

"आप लोगों के पास क्या कोई जादू है? हजारों सैनिकों ने आकर आपके टापू पर एकाएक हमला किया और केवल 300 सैनिकों ने हजारों को मार भगाया और अपने देश की रक्षा की ! इसका क्या कारण है?"

सैनिकों ने कहाः "हमारे देश स्पार्टा में पहले बहुत विषय-विलास और सेक्स चलता था और उससे हमारी सेना और नगरजन निस्तेज हो गये थे। फिर एक महापुरुष ने बताया कि 'संयम-सदाचार से जीकर दो-तीन बच्चों को जन्म देना – यह तो ठीक है लेकिन अपनी शक्ति को हर 8-15 दिन में नष्ट करना, अपना विनाश करना है। पैर पर कुल्हाड़ी मारने से इतना घाटा नहीं होता क्योंकि उससे तो केवल पैर को नुक्सान होता है लेकिन विकार से शक्ति नष्ट होती है तो सारा शरीर कमजोर हो जाता है।' इस प्रकार की सीख देकर उन महापुरुष ने स्पार्टा के सैनिकों तथा नागरिकों को संयम और ब्रह्मचर्य का पाठ पढ़ाया कि 'हम लोग भले मुट्ठीभर हैं लेकिन

बड़े-से-बड़ा राष्ट्र भी अगर हमको बुरी नजर से देखता है या हड़पने की कोशिश करता है तो हम उसकी नाक में दम ला देने की ताकत रखते हैं।"

जिनके जीवन में सयंम है, सदाचार है, जो यौवन सुरक्षा के नियमों को जानते हैं और उनका पालन करते हैं, जो अपने जीवन को मजबूत बनाने की कला जानते हैं और उनका पालन करते हैं, जो अपने जीवन को मजबूत बनाने की कला जानते हैं वे भाग्यशाली साधक, चाहे किसी देवी-देवता या गुरु की सेवा-उपासना करें, सफल हो जाते हैं। जिसके जीवन में संयम है ऐसा युवक बड़े-बड़े कार्यों को भी हँसते-हँसते पूर्ण कर सकता है।

हे विद्यार्थी ! तू अपने को अकेला मत समझना... तेरे दिल में दिलबर र दिलबर का ज्ञान दोनों हैं.... ईश्वर की असीम शक्ति तेरे साथ जुड़ी है। परमात्म-चेतना और गुरुतत्त्व-चेतना, इन दोनों का सहयोग लेता हुआ तू विकारों को कुचल डाल, नकारात्मक चिन्तन को हटा दें, सेवा और स्नेह से, शुद्ध प्रेम और पवित्रता से आगे बढ़ता जा.....

जो महान बनना चाहते हैं वे पवित्र विद्यार्थी कभी फरियादात्मक चिन्तन नहीं करते, दुश्चरित्रवान व्यक्तियों का अनुकरण नहीं करते... जो महान आत्माएँ, संयमी हैं ऐसे मुट्ठीभर दृढ़ संकल्पवाले संयमी पुरुषों का ही तो इतिहास लिखा जाता है। इतिहास क्या है? जिनके जीवन में दृढ़ मनोबल तथा दृढ़ चरित्रबल है, उन महाभाग्यशाली व्यक्तियों का चरित्र ही तो इतिहास है !

हे विद्यार्थी ! तू दृढ़ संकल्प कर कि 'एक सप्ताह के लिए इधर-उधर व्यर्थ समय नहीं गवाऊँगा।' अगर युवती है तो युवान की तरफ बिनजरूरी निगाह नहीं उठाऊँगी। और युवक है तो किसी युवती की तरफ बिनजरूरी निगाह नहीं उठाऊँगा। अगर निगाह उठानी ही पड़ी, बात करनी ही पड़ी तो संयम को, पवित्रता को और भगवान को आगे रखकर फिर ही बात करूँगा।

हे विद्यार्थी ! तू अपने ओज को अभी से सुरक्षित कर, अभी से संयम-सदाचार का पालन कर ताकि जीवन के हर क्षेत्र में तू सफल सके। चाहे हजार विघ्न-बाधाएँ आ जायें, फिर भी जो संयम-सदाचार और ध्यान का रास्ता नहीं छोड़ता, वह संसार में बाजी मार लेता है।

ॐ

अनुक्रम

मन के स्वामी राजा भर्तृहरि

यह घटना तब की है जब राजा भर्तृहरि सम्पूर्ण राज-पाट का त्याग करके गोरखनाथ जी के श्रीचरणों में जा पहुँचे थे और उनसे दीक्षा लेकर, उनकी आज्ञानुसार कौपीन पहनकर विचरण करने लगे थे।

एक बार भर्तृहरि किसी गाँव से गुजर रहे थे। वहाँ उन्होंने देखा कि किसी हलवाई की दुकान पर गरमागरम जलेबी बन रही है। भूतपूर्व सम्राट के मन में आया कि 'आहा ! यह

गरमागरम जलेबी कितनी अच्छी लगती है !' वे दुकान पर जाकर खड़े हो गये और बोलेः "थोड़ी जलेबी दे दो।"

राज-पाट का त्याग कर दिया, माया और कामिनी को भी छोड़ दिया फिर भी जब तक साक्षात्कार नहीं हुआ, तब तक मन कब धोखा दे दे कोई पता नहीं।

दुकानदार ने डाँटते हुए कहाः "अरे ! मुफ्त का खाने को साधु बना है? सुबह-सुबह का समय है, अभी कोई ग्राहक भी नहीं आया है और मैं तुझे मुफ्त में जलेबी दे दूँ तो सारा दिन ऐसे ही मुफ्त में खाने वाले आते रहेंगे। जरा काम-धंधा करो और कुछ टके कमा लो, फिर आना। गाँव के बाहर तालाब खुद रहा है, वहाँ काम करो तो दो टके मिल जायेंगे, फिर मजे से जलेबी खाना।"

भर्तृहरि मजदूरी करने तालाब पर चले गये। दिन भर तालाब की मिट्टी खोदी, टोकरी भर-भरकर फेंकी तो शाम को दो टके मिल गये। भर्तृहरि दो टके की जलेबी ले आये। फिर मन से कहने लगेः 'देख, दिनभर मेहनत की है, अब खा लेना भरपेट जलेबी।'

रास्ते में से उन्होंने भिक्षापात्र में गोबर भर लिया और तालाब के किनारे बैठे। फिर मन से कहने लगेः 'ले ! दिनभर की मेहनत का फल खा ले।' एक हाथ से होठों तक जलेबी लायी व दूसरे हाथ से मुँह में गोबर ठूँस दिया और वह जलेबी पानी में फेंक दी। फिर दूसरी लीः 'ले, ले, खा....' कहकर जलेबी तालाब में फेंक दी और मुँह में गोबर भर दिया। भर्तृहरि मन को डाँटने लगे।

'राज-पाट छोड़ा, सगे-सम्बन्धी छोड़े, फिर भी अभी तक स्वाद नहीं छूटा? मछली की तरह जिह्वा के विकार में फँसा है तो ले, खा ले।' ऐसा कहकर फिर से मुँह में गोबर ठूँस दिया। मुँह से थू-थू होने लगा तब भी वे बोलेः 'नहीं, नहीं, अभी और खा ले। यह भी तो जलेबी है। गाय ने भी जब चारा खाया था तो उसके लिए वह जलेबी ही था। गाय का खाया हुआ चारा तो अब गोबर बना है।'

ऐसा करते-करते उन्होंने सारी जलेबियाँ तालाब में फेंक दीं। अब हाथ में आखिरी जलेबी बची थी। मन ने कहाः 'देखो, तुमने मुझे इतना सताया है, दिनभर मेहनत करके इतना थकाया है कि चलना भी मुश्किल हो रहा है। अब कुल्ला करके केवल एक जलेबी तो खाने दो।'

भर्तृहरि ने मन से कहाः 'अच्छा, अभी भी तू मेरा स्वामी ही बना रहना चाहता है तो ले...' और झट से वह आखिरी जलेबी भी तालाब में डाल दी और कहाः 'अब और जलेबी कल ला दूँगा और ऐसे ही खिलाऊँगा।'

अब भर्तृहरि के मन ने तो मानों, उनके आगे हाथ जोड़ दिये कि 'अब जलेबी नहीं माँगूगा, कभी नहीं माँगूगा। अब मैं वही करूँगा, जो आप कहोगे।'

अब मन हो गया नौकर और खुद हो गये स्वामी। मन के कहने में आकर खुद स्वामी होते हुए भी नौकर जैसे बन गये थे तथा मन बन गया था स्वामी।

इस तरह संयम से, शक्ति से अथवा मन को समझा-बुझाकर भी आप अपनी रक्षा करने को तत्पर होंगे तभी रक्षा हो सकेगी अन्यथा तैंतीस करोड़ देवता भी आ जायें परंतु जब तक आप स्वयं विकारों से बचकर ऊँचे उठना नहीं चाहोगे तब तक आपका कल्याण संभव ही नहीं है।

मन में विकार आयें तो विकारों को सहयोग देकर अपना सत्यानाश मत करो। दृढ़ता नहीं रखोगे और मन को जरा-सी भी छूट दे दोगे कि 'जरा चखने में क्या जाता है.... जरा देखने में क्या जाता है.... जरा ऐसा कर लिया तो क्या? ....जरा-सी सेवा ले ली तो उसमें क्या?...' तो ऐसे जरा-जरा करते-करते मन कब पूरा घसीटकर ले जाता है, पता भी नहीं चलता। अतः सावधान ! मन को जरा भी छूट मत दो।

ॐ

अनुक्रम

मीरा की अडिगता

मीरा के जीवन में कई विपत्तियाँ आयीं लेकिन मीरा के चित्त में अशांति नहीं हुई। मीरा के कीर्तन-भजन में भक्ति रस से लोग इतने सराबोर हो जाते कि बात दिल्ली में अकबर के कानों तक जा पहुँची। अकबर ने तानसेन को बुलाया और कहाः

"तानसेन ! मैंने सुना है कि मीरा की महफिल में जाने स लोग संसारी दुःख भूल जाते हैं।"

तानसेनः "हाँ।"

अकबरः "मैंने सुना है कि मीरा के पद सुनते-सुनते वह रस प्रकट होने लगता है जिसके आगे संसार का रस फीका हो जाता है ! क्या ऐसा हो सकता है?"

तानसेनः "हाँ, जहाँपनाह ! हो सकता है।"

अकबरः "मेंने यह भी सुना है कि मीरा के कीर्तन-भजन में लोग अपनी मान-बड़ाई, छोटापन-बड़प्पन वगैरह भूलकर रसमय हो जाते हैं। क्या ऐसा भी हो सकता है?"

तानसेनः "हाँ, जहाँपनाह ! हो सकता है।"

अकबरः "मैंने यह भी सुना है कि मीरा के कीर्तन-भजन में लोग अपनी मान-बड़ाई, छोटापन-बड़प्पन वगैरह भूलकर रसमय हो जाते हैं ! क्या ऐसा भी हो सकता है?"

तानसेनः "हाँ, जहाँपनाह ! हो सकता नहीं, होता है।"

अकबरः "तो मुझे ले चलो मीरा के पास।"

तानसेनः "अगर आप राजाधिराज महाराज होकर चलोगे तो मीरा की करुणा-कृपा का लाभ आपको नहीं मिल सकेगा। हमें भक्त का वेश बनाकर जाना चाहिए।"

अकबर और तानसेन ने भक्त का वेश बनाया और मीरा के कीर्तन-भजन में आकर बैठे।

एक वैज्ञानिक तथ्य हैः

आप एक कमरे में दस तंबूरे मँगवा लो। नौ तंबूरों को नौ व्यक्ति बजायें एवं दसवें तंबूरे को यूँ ही दीवार के सहारे रख दो। अगर नौ तंबूरे झंकार करते हैं तो दसवाँ तंबूरा बिना बजाने वाले के भी झंकृत होने लगता है। उसके तारों में स्पंदन होने लगते हैं।

जब जड़ तंबूरा स्पंदन झेल लेता है तो जहाँ भगवान के सैंकड़ों तंबूरे आनंद ले रहे हों वहाँ ये दो तंबूरे भी चुप कैसे बैठ सकते थे? तानसेन भी झूमा और अकबर भी।

जब सत्संग-कीर्तन पूरा हुआ तब एक-एक करके लोग वहाँ रखी हुई ठाकुरजी की मूर्ति तथा मीरा को प्रणाम करने लगे। तानसेन ने भी मत्था टेका। अकबर ने सोचाः 'कोई दूध का प्याला भी पिला देता है तो बदले में उसे आमंत्रण देते हैं कि 'भाई ! तू हमारे यहाँ आना।' इस मीरा ने तो रब की भक्ति का प्याला पिलाया है, अब इसे क्या दें?' अकबर ने अपने गले से मोतियों की माला निकालकर मीरा के चरणों में रख दी।

मीरा के सत्संग-कीर्तन में केवल सत्संगी ही आते थे, ऐसी बात नहीं थी। विक्रम राणा के खुफिया विभाग के गुप्तचर भी वहाँ आते थे। उनकी नजर उस माला पर पड़ीः 'मोतियों की माला! यह साधारण तो नहीं लगती...' उन्होंने मोतियों की माला लाने वाले का पीछा किया और विक्रम राणा को जाकर भड़कायाः

"आपकी भाभी के गले में जो हार पड़ा है वह किसी साधारण व्यक्ति का हार नहीं है। अकबर आपकी भाभी को हार दे गया है। हमको लगता है कि अकबर और मीरा का आपस में गलत रिश्ता है।"

खुफियावालों को पता था कि विक्रम राणा मीरा का विरोधी है। अतः उन्होंने भी कुछ मसाला डालकर बात सुना दी। विक्रम राणा मीरा को बदनाम करके मौत के घाट उतारने की साजिशों में लगा रहता था। उसने स्कूल के शिक्षकों को आदेश दिया था कि बच्चों से कहें- 'मीरा ऐसी है.... वैसी है....' मीरा के लिए घर-घर में नफरत और अपने घर में भी मुसीबत.... फिर भी मीरा की भक्ति इतनी अडिग थी कि इतने विरोधों के बावजूद भी भगवान के आनंद-माधुर्य में मीरा स्वयं तो डूबी ही रहती थी, औरों को डुबोने का सामर्थ्य भी उसके पास था।

विक्रम राणा को जब यह पता चला कि अकबर आया था, तब वह पैर पटकता-पटकता मीरा के कक्ष के पास आया और दरवाजा खटखटाते हुए बोलाः

"भाभीऽऽऽ....! दरवाजा खोल। तू मेवाड़ पर कलंक है। अब मैं तेरी एक न सुनूँगा। मेवाड़ में अब तेरा एक घंटे के लिए रहना भी मुझे स्वीकार नहीं है।"

विक्रम हाथों में नंगी तलवार लिए हुए बड़बड़ाये जा रहा था। मीरा ने दरवाजा खोला। मीरा के चेहरे पर भय की रेखा तक न थी। यही है भक्ति का प्रभाव ! मृत्यु सामने है फिर भी चित्त में उद्विग्नता नहीं।

विक्रमः "अपना सिर नीचे झुका दे। मैं तेरी एक बात नहीं सुनना चाहता। आज तेरे सिर रूपी नारियल की बलि मेवाड़ की भूमि को दूँगा ताकि मेवाड़ के पाप मिट जायें।"

भक्तों के जीवन में कैसी-कैसी विपत्तियाँ आती हैं !

मीरा ने सिर झुका दिया। विक्रम राणा पुनः बोलाः

"आज तक तो सुना था कि तू मुण्डों (साधुओं के लिए प्रयुक्त हलका शब्द) के चक्कर में है लेकिन आज पता चला है कि अकबर जैसों के साथ भी तेरी साँठ-गाँठ है। अब तू इस धरती पर नहीं जी सकती।"

विक्रम ने दोनों हाथों से तलवार उठायी और ज्यों ही प्रहार करने के लिए उद्यत हुआ, त्यों ही हाथ रुक गये और उठे हुए हाथ नीचे आने की चेतना ही खो बैठे। एक-दो मिनट तो विक्रम राणा ने अपनी बहादुर की डींग हाँकी लेकिन मीरा की भक्ति के आगे उसकी शक्ति क्षीण हो गयी। राणा घबराया और बोल पड़ाः "भाभीऽऽऽ....! यह क्या हो गया?"

मीरा ने सिर ऊँचा किया और पूछाः "क्या बात है?"

विक्रमः "भाभी ! यह तुमने क्या कर दिया?"

मीराः "मैंने तो कुछ नहीं किया।"

फिर मीरा ने प्रभु से प्रार्थना कीः "हे कृष्ण ! इन्हें माफ कर दो।"

विक्रम राणा के हाथों में चेतना आयी, तलवार कोने में गिरी और उसका सिर मीरा के चरणों में झुक गया।

परमात्म-पथ के पथिक कभी भी, किसी भी विघ्न-बाधा से नहीं घबराते। सामने मृत्यु ही क्यों न खड़ी हो, उनका चित्त विचलित नहीं होता।

ठीक ही कहा हैः

बाधाएँ कब बाँध सकी हैं, आगे बढ़नेवालों को?
विपदाएँ कब रोक सकी हैं पथ पर चलनेवालों को?

ॐ

अनुक्रम

राजेन्द्रबाबू की दृढ़ता

राजेन्द्र बाबू बचपन में जिस विद्यालय में पढ़ते थे, वहाँ कड़ा अनुशासन था। एक बार राजेन्द्रबाबू मलेरिया के रोग से पीड़ित होने से परीक्षा बड़ी मुश्किल से दे पाये थे। एक दिन प्राचार्य उनके वर्ग में आकर कहने लगेः "प्यारे बच्चो ! मैं जिनके नाम बोल रहा हूँ वे सब विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं।"

प्राचार्य ने नाम बोलना शुरु कर दिया। पूरी सूचि खत्म हो गयी फिर भी राजेन्द्रबाबू का नाम नहीं आया। तब राजेन्द्रबाबू ने उठकर कहाः "साहब ! मेरा नाम नहीं आया।"

प्राचार्य ने गुस्से होकर कहाः "तुमने अनुशासन का भंग किया है। जो विद्यार्थी उत्तीर्ण हुए हैं उनका ही नाम सूचि में है, समझे? बैठ जाओ।"

"लेकिन मैं पास हूँ।"

"5 रूपये दंड।"

"आप भले दंड दीजिए, परंतु मैं पास हूँ।"

"10 रूपये दंड।"

"आचार्यदेव ! भले मैं बीमार था, मुझे मलेरिया हुआ था लेकिन मैंने परीक्षा दी है और मैं उत्तीर्ण हुआ हूँ।"

"15 रूपये दंड।"

"मैं पास हूँ.... सच बोलता हूँ।"

"20 रूपये दंड।"

"मैंने पेपर ठीक से लिखा था।"

प्राचार्य क्रोधित हो गये कि मैं दंड बढ़ाता जा रहा हूँ फिर भी यह है कि अपनी जिद नहीं छोड़ता !

"25 रूपये दंड।"

"मेरा अंतरात्मा नहीं मानता है कि मैं अनुत्तीर्ण हो गया हूँ।"

जुर्माना बढ़ता जा रहा था। इतने में एक क्लर्क दौड़ता-दौड़ता आया और उसने प्राचार्य के कानों में कुछ कहा। फिर क्लर्क ने राजेन्द्रबाबू के करीब आकर कहाः "क्षमा करो। तुम पहले नंबर से पास हुए हो लेकिन साहब की इज्जत रखने के लिए अब तुम चुपचाप बैठ जाओ।"

राजेन्द्रबाबू नमस्कार कर के बैठ गये।

राजेन्द्रबाबू ने अपने हाथ से पेपर लिखा था। उन्हें दृढ़ विश्वास था कि मैं पास हूँ तो उन्हें कोई डिगा नहीं सका। आखिर उनकी ही जीत हुई। दृढ़ता से उन्हें कोई डिगा नहीं सका। आखिर उनकी ही जीत हुई। दृढ़ता में कितनी शक्ति है ! मानव यदि किसी भी कार्य को तत्परता से करे और दृढ़ विश्वास रखे तो अवश्य सफल हो सकता है।

ॐ

अनुक्रम

जिसके चरणों के रावण भी न हिला सका....

भगवान श्रीराम जब सेतु बाँधकर लंका पहुँच गये तब उन्होंने बालिकुमार अंगद को दूत बनाकर रावण के दरबार में भेजा।

रावण ने कहाः "अरे बंदर ! तू कौन है?"

अंगदः "हे दशग्रीव ! मैं श्रीरघुवीर का दूत हूँ। मेरे पिता से तुम्हारी मित्रता थी, इसीलिए मैं तुम्हारी भलाई के लिए आया हूँ। तुम्हारा कुल उत्तम है, पुलस्त्य ऋषि के तुम पौत्र हो। तुमने शिवजी और ब्रह्माजी की बहुत प्रकार से पूजा की है। उनसे वर पाये हैं और सब काम सिद्ध किये हैं। किंतु राजमद से या मोहवश तुम जगज्जननी सीता जी को हर लाये हो। अब तुम मेरे शुभ वचन सुनो। प्रभु श्रीरामजी तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर देंगे।

दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी।।
सादर जनकसुता करि आगें। एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागें।।4।।

(श्रीरामचरित. लंकाकाण्डः 19.4)

दाँतों में तिनका दबाओ, गले में कुल्हाड़ी डालो और अपनी स्त्रियों सहित कुटुम्बियों को साथ लेकर, आदरपूर्वक जानकी जी को आगे करके इस प्रकार सब भय छोड़कर चलो और हे शरणागत का पालन करने वाले रघुवंशशिरोमणि श्रीरामजी ! मेरी रक्षा कीजिए.... रक्षा कीजिए...' इस प्रकार आर्त प्रार्थना करो। आर्त पुकार सुनते ही प्रभु तुमको निर्भय कर देंगे।"

अंगद को इस प्रकार कहते हुए देखकर रावण हँसने लगा और बोलाः

"क्या राम की सेना में ऐसे छोटे-छोटे बंदर ही भरे हैं? हाऽऽऽ हाऽऽऽ हाऽऽऽ.... यह राम का मंत्री है? एक बंदर आया था हनुमान और यह वानर का बच्चा अंगद !"

अंगदः "रावण ! मनुष्य की परख अक्ल होशियारी से होती है, न कि उम्र से।"

फिर अंगद को हुआ कि 'यह शठ है, ऐसे नहीं मानेगा। इसे मेरे प्रभु श्रीराम का प्रभाव दिखाऊँ।' अंगद ने रावण की सभा में प्रण करके दृढ़ता के साथ अपना पैर जमीन पर जमा दिया और कहाः

"अरे मूर्ख ! यदि तुममें से कोई मेरा पैर हटा सके तो श्रीरामजी जानकी माँ को लिए बिना ही लौट जायेंगे।"

कैसी दृढ़ता थी भारत के उस युवक अंगद में ! उसमें कितना साहस और शौर्य था कि रावण से बड़े-बड़े दिग्पाल तक डरते थे उसी की सभा में उसी को ललकार दिया !

मेघनाद आदि अनेकों बलवान योद्धाओं ने अपने पूरे बल से प्रयास किये किंतु कोई भी अंगद के पैर को हटा तो क्या, टस-से-मस तक न कर सका। अंगद के बल के आगे सब हार

गये। तब अंगद के ललकारने पर रावण स्वयं उठा। जब वह अंगद का पैर पकड़ने लगा तो अंगद ने कहाः

"मेरे पैर क्या पकड़ते हो रावण ! जाकर श्रीरामजी के पैर पकड़ो तो तुम्हारा कल्याण हो जायेगा।"

यह सुनकर रावण बड़ा लज्जित हो उठा। वह सिर नीचा करके सिंहासन पर बैठ गया। कैसा बुद्धिमान था अंगद ! फिर रावण ने कूटनीति खेली और बोलाः

"अंगद ! तेरे पिता बालि मेरे मित्र थे। उनको राम ने मार दिया और तू राम के पक्ष में रहकर मेरे विरुद्ध लड़ने को तैयार है? अंगद ! तू मेरी सेना में आ जा।"

अंगद वीर, साहसी, बुद्धिमान तो था ही, साथ ही साथ धर्मपरायण भी था। वह बोलाः

"रावण ! तुम अधर्म पर तुले हो। यदि मेरे पिता भी ऐसे अधर्म पर तुले होते तो उस वक्त भी मैं अपने पिता को सीख देता और उनको विरुद्ध श्रीरामजी के पक्ष में खड़ा हो जाता। जहाँ धर्म और सच्चाई होती वहीं जय होती है। रावण ! तुम्हारी यह कूटनीति मुझ पर नहीं चलेगी। अभी भी सुधर जाओ।"

कैसी बुद्धिमानी की बात की अंगद ने ! इतनी छोटी उम्र में ही मंत्रीपद को इतनी कुशलता से निभाया कि शत्रुओं के छक्के छूट गये। साहस, शौर्य, बल, पराक्रम, तेज-ओज से संपन्न वह भारत का युवा अंगद केवल वीर ही नहीं, विद्वान भी था, धर्म-नीतिपरायण भी था और साथ ही प्रभुभक्ति भी उसमें कूट-कूटकर भरी हुई थी।

हे भारत के नौजवानो ! याद करो उस अंगद की वीरता को कि जिसने रावण जैसे राक्षस को भी सोचने पर मजबूर कर दिया। धर्म तथा नीति पर चलकर अपने प्रभु की सेवा में अपना तन-मन अर्पण करने वाला वह अंगद इसी भूमि पर पैदा हुआ था। तुम भी उसी भारतभूमि की संतानें हो, जहाँ अंगद जैसे वीर रत्न पैदा हुए। भारत की आज की युवा पीढ़ी चाहे तो बहुत कुछ सीख सकती है अंगद के चरित्र से।

अनुक्रम

काली की वीरता

राजस्थान के डूंगरपुर जिले के रास्तपाल गाँव की 19 जून, 1947 की घटना हैः

उस गाँव की 10 वर्षीय कन्या काली अपने खेत से चारा सिर पर उठाकर आ रही थी। हाथ में हँसिया था। उसने देखा कि 'ट्रक के पीछे हमारे स्कूल के मास्टर साहब बँधे हैं और घसीटे जा रहे हैं।'

काली का शौर्य उभरा, वह ट्रक के आगे जा खड़ी हुई और बोलीः

"मेरे मास्टर को छोड़ दो।"

सिपाहीः "ऐ छोकरी ! रास्ते से हट जा।"

"नहीं हटूँगी। मेरे मास्टर साहब को ट्रक के पीछे बाँधकर क्यों घसीट रहे हो?"

"मूर्ख लड़की ! गोली चला दूँगा।"

सिपाहियों ने बंदूक सामने रखी। फिर भी उस बहादुर लड़की ने उनकी परवाह न की और मास्टर को जिस रस्सी से ट्रक से बाँधा गया था उसको हँसिये काट डाला !

लेकिन निर्दयी सिपाहियों ने, अंग्रेजों के गुलामों ने धड़ाधड़ गोलियाँ बरसायीं। काली नाम की उस लड़की का शरीर तो मर गया लेकिन उसकी शूरता अभी भी याद की जाती है।

काली के मास्टर का नाम था सेंगाभाई। उसे क्यों घसीटा जा रहा था? क्योंकि वह कहता था कि 'इन वनवासियों की पढ़ाई बंद मत करो और इन्हें जबरदस्ती अपने धर्म से च्युत मत करो।'

अंग्रेजों ने देखा कि 'यह सेंगाभाई हमारा विरोध करता है सबको हमसे लोहा लेना सिखाता है तो उसको ट्रक से बाँधकर घसीटकर मरवा दो।'

वे दुष्ट लोग गाँव के इस मास्टर की इस ढँग से मृत्यु करवाना चाहते थे कि पूरे डूंगरपुर जिले मे दहशत फैल जाय ताकि कोई भी अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज न उठाये। लेकिन एक 10 वर्ष की कन्या ने ऐसी शूरता दिखाई कि सब देखते रह गये !

कैसा शौर्य ! कैसी देशभक्ति और कैसी धर्मनिष्ठा थी उस 10 वर्षीय कन्या की। बालको ! तुम छोटे नहीं हो।

हम बालक हैं तो क्या हुआ, उत्साही हैं हम वीर हैं।

हम नन्हें-मुन्ने बच्चे ही, इस देश की तकदीर हैं।।

तुम भी ऐसे बनो कि भारत फिर से विश्वगुरु पद पर आसीन हो जाय। आप अपने जीवनकाल में ही फिर से भारत को विश्वगुरु पद पर आसीन देखो... हरिॐ....ॐ....ॐ....

ॐ

अनुक्रम

आत्मज्ञान की दिव्यता

भारत की विदूषी कन्या सुलभा एक बार राजा जनक के दरबार में पहुँची। यह बात उस समय की है जब कन्याएँ राजदरबार में नहीं जाया करती थीं। वह साहसी कन्या सुलभा जब सात्त्विक वेषभूषा में राजा जनक के दरबार में पहुँची तब उसकी पवित्र, सौम्य मूर्ति देखकर राजा जनक का हृदय श्रद्धा से अभिभूत हो उठा।

जनक ने पूछाः "देवि ! तुम यहाँ कैसे आयी हो? तुम्हारा परिचय क्या है?"

कन्याः "राजन ! मैं आपकी परीक्षा लेने के लिए आयी हूँ।"

कैसा रहा होगा भारत की उस कन्या में दिव्य आध्यात्मिक ओज ! जहाँ पंडित लोग खुशामद करते थे, जहाँ तपस्वी लोग भी जनक की जय-जयकार किये बिना नहीं रहते थे और भाट-चारण दिन रात जिनके गुणगान गाने में अपने को भाग्यशाली मानते थे वहाँ भारत की वह 16-17 वर्ष की कन्या कहती हैः "राजन ! मैं तुम्हारी परीक्षा लेने आयी हूँ।"

सुलभा की बात सुनकर राजा जनक प्रसन्न हुए कि मेरे देश में ऐसी भी बालिकाएँ हैं ! वे बोलेः "मेरी परीक्षा?"

कन्याः "हाँ, राजन् ! आपकी परीक्षा। आप मेरा परिचय जानना चाहते हैं तो सुनिये। मेरा नाम सुलभा है। मैं 16 वर्ष की हुई तो मेरे माता-पिता मेरे विवाह के विषय में कुछ विचार-विमर्श करने लगे। मैंने खिड़की से उनकी सारी बातें सुन लीं। मैंने उनसे कहाः 'संसार में तो जब प्रवेश होगा तब होगा, पहले जीवात्मा को अपनी आत्मशक्ति जगानी चाहिए। आप एक बार मुझे सत्संग में ले गये थे, जिसमें मैंने सुना था कि प्राणिमात्र के हृदय में जो परमात्मा छिपा है, उस परमात्मा की जितनी शक्तियाँ मनुष्य जगा सके उतना ही वह महान बनता है। अतः मुझे पहले महान बनने की दीक्षा-शिक्षा दिलाने की कृपा करें।'

पहले तो मेरे पिता हिचकिचाने लगे किंतु मेरी माँ ने उन्हें प्रोत्साहित किया। मेरे माता-पिता ने जिन गुरुदेव से दीक्षा ली थी उनसे मुझे भी दीक्षा दिलवा दी। मेरे गुरुदेव ने मुझे प्राणायाम-ध्यानादि की विधि सिखायी। मैंने डेढ़ सप्ताह तक उनकी बतायी विधि के अनुसार साधना की तो मेरी सुषुप्त शक्ति जाग्रत होने लगी। कभी मैं ध्यान में हँसती, कभी रुदन करती.... इस प्रकार विभिन्न अनुभवों से गुजरते-गुजरते और आत्मशक्ति का एहसास करते-करते 6 महीनों में मेरी साधना में चार चाँद लग गये। फिर गुरुदेव ने मुझे तत्त्वज्ञान का उपदेश दियाः 'बुद्धि की निर्णयशक्ति का, मन की प्रसन्नता का और शरीर की रोगप्रतिकारक शक्ति का विकास जहाँ से होता है उस अपने स्वरूप को जान।'

मन तू ज्योतिस्वरूप अपना मूल पिछान।

पूज्य गुरुदेव ने तत्त्वज्ञान की वर्षा कर दी। अब मैं आपसे यह पूछना चाहती हूँ कि मैं तो एकान्त में रोज एक-दो घण्टे जप-ध्यान करती थी जिससे मेरी स्मरणशक्ति, बुद्धिशक्ति, अनुमान शक्ति, क्षमा शक्ति, शौर्य आदि का विकास हुआ और बाद में जहाँ से सारी शक्तियाँ बढ़ती हैं उस परब्रह्म परमात्मा का, सोऽहं स्वरूप का ज्ञान गुरु से मिला तब मुझे साक्षात्कार के बाद आपको इन भँवर डुलानेवाली ललनाओं और छत्र की क्या जरूरत है? इस राज-वैभव और महलों की क्या जरूरत है? जिसके हृदय में आत्मसुख पैदा हो गया उसे संसार का सुख तो तुच्छ लगता है। फिर भी हे राजन् ! आप संसार के नश्वर सुख में क्यों टिके हैं?"

सुलभा के प्रश्नों को सुनकर जनक बोलेः "सुनो, सुलभा ! पिछले जन्म में मैं व मेरे कुछ साथी हमारे गुरुदेव के आश्रम में जाते थे। गुरुदेव हमें प्राणायाम आदि साधना की विधि बताते

थे। एक बार गुरुदेव कहीं घूमने निकल गये। हम सब छात्र मिलकर नदी में नहा रहे थे और हममें से जो सबसे छोटा विद्यार्थी था उसकी मजाक उड़ा रहे थे कि 'बड़ा जोगी आया है.... तेरे को ईश्वर नहीं मिलेंगे, हम मिलेंगे.....' और मैंने तो उद्दण्डता करके उस छोटे-से विद्यार्थी के सिर पर टकोरा मार दिया। हमारे व्यवहार से दुःखी होकर वह रोने लगा। इतने में गुरुदेव पधारे और सारी बात जानकर नाराज होकर मुझसे बोलेः 'जब तक इस नन्हें विद्यार्थी को परमात्मा का अनुभव नहीं होगा तब तक तुमको भी नहीं होगा और जब होगा तब इसी की कृपा से होगा।'

समय पाकर हमारा वह जीवन पूरा हुआ लेकिन गुरुद्वार पर रहे थे, साधना आदि की थी अतः इस जन्म में मैं राजा बना और वह नन्हा सा विद्यार्थी अष्टावक्र मुनि बना। अष्टावक्र मुनि को माता के गर्भ में ही परमात्मा का साक्षात्कार हो गया।

उन्हीं अष्टावक्र मुनि के श्रीचरणों में मैंने परमात्म-ज्ञान की प्रार्थना की, तब वे बोलेः

'शिष्य सत्पात्र हो और सदगुरु समर्थ हों तो घोड़े की रकाब में पैर डालते-डालते भी परमात्म-तत्त्व का साक्षात्कार हो सकता है। डाल रकाब में पैर।'

मैंने रकाब में पैर डाला तो वे बोलेः

'तुझे ईश्वर के दर्शन करने हैं। लेकिन तू मुझे क्या मानता है?'

'आपको मैं गुरु नहीं, सदगुरु मानता हूँ।'

'अच्छा, सदगुरु मानता है, तो ला दक्षिणा।'

'गुरुजी ! तन, मन, धन सब आपका है।'

मैं जैसे ही पैर उठाने गया तो वे बोल उठेः 'जनक ! तन मेरा हो गया तो मेरी आज्ञा के बिना क्यों पैर उठा रहा है?'

मैं सोचने लगा तो वे बोलेः 'मन भी मेरा हो गया, इसका उपयोग मत कर।'

मेरा मन क्षण भर के लिए शांत हो गया। फिर बुद्धि से विचारने लगा तो गुरुदेव बोलेः 'छोड़ अब सोचना।'

गुरुदेव ने थोड़ी देर शांत होकर कृपा बरसायी और मुझे परमात्मा-तत्त्व का साक्षात्कार हो गया। अब मुझे यह संसार स्वप्न जैसा लगता है और चैतन्यस्वरूप आत्मा अपना लगता है। दुःख के समय मुझे दुःख की चोट नहीं लगता और सुख के समय मुझे सुख का आकर्षण नहीं होता। मैं मुक्तात्मा होकर राज्य करता हूँ।

सुलभा ! तुम्हारा दूसरा प्रश्न था कि 'जब परमात्मा का आनंद आ रहा है तो फिर आप राजगद्दी का मजा क्यों ले रहे हैं'

मेरे गुरुदेव ने कहा थाः 'अच्छे व्यक्ति अगर राजगद्दी से हट जायेंगे तो स्वार्थी, लोलुप और एक-दूसरे की टाँग खींचनेवाले लोगों का प्रभाव बढ़ जायेगा। ब्रह्मज्ञानी अगर राज्य करेंगे तो प्रजा में भी ब्रह्मज्ञान का प्रचार-प्रसार होगा।

सुलभा ! ये चँवर और छत्र राजपद का है। इसलिए इस राज-परिधान का उपयोग करके मैं अच्छी तरह से राज्य करता हूँ और राज-काज से निपटकर रोज आत्मध्यान करता हूँ।"

सुलभा के एक-एक प्रश्न का संतोषप्रद जवाब राजा जनक ने दिया, जिससे सुलभा का हृदय प्रसन्न हुआ और राजा जनक भी सुलभा के प्रश्नों से प्रसन्न होकर बोलेः "सुलभा ! मुझे तुम्हारा पूजन करने दो।"

साधुओं का नाम लो तो शुकदेव जी का पहला नंबर आता है। उन शुकदेवजी के गुरु राजा जनक, जीवन्मुक्त मिथिलानरेश, 17 वर्षीय सुलभा का पूजन करते हैं। कैसा दिव्य आदर है आत्मज्ञान का !

जो मनुष्य आत्मज्ञान का आदर करता है वह आध्यात्मिक जगत में तो उन्नत होता ही है लेकिन भौतिक जगत की वस्तुएँ भी उसके पीछे-पीछे दौड़ी चली आती हैं। ऐसा दिव्य है आत्मज्ञान !

ॐ

अनुक्रम

प्रतिभावना बालक रमण

महाराष्ट्र में एक लड़का था। उसकी माँ बड़ी कुशल और सत्संगी थी। वह उसे थोड़ा-बहुत ध्यान सिखाती थी। अतः जब लड़का 14-15 साल का हुआ तब तक उसकी बुद्धि विलक्षण बन चुकी थी।

चार डकैत थे। उन्होंने कहीं डाका डाला तो उन्हें हीरे-जवाहरात से भरी अटैची मिल गयी। उसे सुरक्षित रखने के लिए चारों एक ईमानदार बुढ़िया के पास गये। अटैची देते हुए बुढ़िया से बोलेः

"माताजी ! हम चारों मित्र व्यापार धंधा करने निकले हैं। हमारे पास कुछ पूँजी है। इस जोखिम को कहाँ साथ लेकर घूमें? यहाँ हमारी कोई जान-पहचान भी नहीं है। आप इसे रखो और जब हम चारों मिलकर एक साथ लेने के लिए आयें तब लौटा देना।"

बुढ़िया ने कहाः "ठीक हो।"

अटैची देकर चारों रवाना हुए, आगे गये तो एक चरवाहा दूध लेकर बेचने जा रहा था। इन लोगों को दूध पीने की इच्छा हुई। पास में कोई बर्तन तो था नहीं। तीन डकैतों ने अपने चौथे साथी को कहाः "जाओ, वह बुढ़िया का घर दिख रहा है, वहाँ से बर्तन ले आओ। हम लोग यहाँ इंतजार करते हैं।"

डकैत बर्तन लेने चला गया। रास्ते में उसकी नीयत बिगड़ गयी। वह बुढ़िया के पास आकर बोलाः "माताजी ! हम लोगों ने विचार बदल दिया है। हम यहाँ नहीं रुकेंगे, आज ही दूसरे

नगर में चले जायेंगे। अतः हमारी अटैची लौटा दीजिए। मेरे तीन दोस्त सामने खड़े हैं। उन्होंने मुझे अटैची लेने भेजा है।"

बुढ़िया ने बाहर आकर उसके साथियों की तरफ देखा तो तीनों दूर खड़े हैं। बुढ़िया ने बाहर आकर उसके साथियों की तरफ देखा तो तीनों दूर खड़े हैं। बुढ़िया ने बात पक्की करने के लिए उनको इशारे से पूछाः

"इसको दे दूँ?"

डकैतों को लगा कि 'माई पूछ रही है – इसको बर्तन दूँ?' तीनों ने दूर से ही कह दियाः "हाँ, हाँ, दे दो।"

बुढ़िया घर में गयी। पिटारे से अटैची निकालकर उसे दे दी। वह चौथा डकैत अटैची लेकर दूसरे रास्ते से पलायन कर गया।

तीनों साथी काफी इंतजार करने के बाद बुढ़िया के पास पहुँचे। उन्हें पता चला कि चौथा साथी अटैची ले भागा है। अब तो वे बुढ़िया पर ही बिगड़ेः "तुमने एक आदमी को अटैची दी ही क्यों? जबकि शर्त तो चारों एक साथ मिलकर आयें तभी देने की थी।"

उलझी बात राजदरबार में पहुँची। डकैतों ने पूरी हकीकत राजा को बतायी। राजा ने भाई से पूछाः

"क्यों, जी ! इन लोगों ने बक्सा दिया था?"

"जी महाराज !"

ऐसा कहा था कि जब चारों मिलकर आयें तब लौटाना?"

"जी महाराज।"

राजा ने आदेश दियाः "तुमने एक ही आदमी को अटैची दे दी, अब इन तीनों को भी अपना-अपना हिस्सा मिलना चाहिए। तेरी माल-मिल्कियत, जमीन-जायदाद जो कुछ भी हो उसे बेचकर तुम्हें इन लोगों का हिस्सा चुकाना पड़ेगा। यह हमारा फरमान है।"

बुढ़िया रोने लगी। वह वधवा थी और घर में छोटे बच्चे थे। कमानेवाला कोई था नहीं। सम्पत्ति नीलाम हो जायेगी तो गुजारा कैसे होगा?। वह अपने भाग्य को कोसती हुई, रोती-पीटती रास्ते से गुजर रही थी। जब 15 साल से रमण ने उसे देखा तब वह पूछने लगाः

"माताजी ! क्या हुआ? क्यों रो रही हो?"

बुढ़िया ने सारा किस्सा कह सुनाया। आखिर में बोलीः

"क्या करूँ, बेटे? मेरी तकदीर ही फूटी है, वरना उनकी अटैची लेती ही क्यों?"

रमण ने कहाः "माताजी ! आपकी तकदीर का कोई कसूर नहीं है, कसूर तो राजा की खोपड़ी का है।"

संयोगवश राजा गुप्तवेश में वहीं से गुजर रहा था। उसने सुन लिया और पास आकर पूछने लगाः "क्या बात है?"

"बात यह है कि नगर के राजा को न्याय करना नहीं आता। इस माताजी के मामले में उन्होंने गलत निर्णय दिया है।" रमण निर्भयता से बोल गया।

राजाः "अगर तू न्यायधीश होता तो कैसा न्याय देता?" किशोर रमण की बात सुनकर राजा की उत्सुकता बढ़ रही थी।

रमणः "राजा को न्याय करवाने की गरज होगी तो मुझे दरबार में बुलायेंगे। फिर मैं न्याय दूँगा।"

दूसरे दिन राजा ने रमण को राजदरबार में बुलवाया। पूरी सभा लोगों से खचाखच भरी थी। वह बुढ़िया माई और तीनों मित्र भी बुलाये गये थे। राजा ने पूरा मामला रमण को सौंप दिया।

रमण ने बुजुर्ग न्यायधीश की अदा से मुकद्दमा चलाते हुए पहले बुढ़िया से पूछाः "क्यों, माताजी ! चार सज्जनों ने आपको अटैची सँभालने के लिए दी थी?"

बुढ़ियाः "हाँ।"

रमणः "चारों सज्जन मिलकर एक साथ अटैची लेने आयें तभी अटैची लौटाने के लिए कहा था?"

"हाँ।"

रमण ने अब तीनो मित्रों से कहाः "अरे, तब तो झगड़े की कोई बात ही नहीं है। सदगृहस्थो ! आपने ऐसा ही कहा था न कि जब हम चारों मिलकर आयें तब हमें अटैची लौटा देना?"

डकैतः "हाँ, ठीक बात है। हमने इस माई से ऐसा ही तय किया था।"

रमणः "ये माताजी तो अभी भी आपको अटैची लौटाने को तैयार हैं, मगर आप ही अपनी शर्त को भंग कर रहे हैं।"

"कैसे?"

"आप चार साथी मिलकर आओ तो अभी आपको आपकी अमानत दिलवा देता हूँ। आप तो तीन ही हैं, चौथा कहाँ है?"

"साहब ! वह तो.... वह तो....."

"उसे बुलाकर लाओ। जब चारों एक साथ आओगे तभी आपको अटैची मिलेगी, नाहक में इन बेचारी माताजी को परेशान कर रहे हो।"

तीनों व्यक्ति मुँह लटकाये रवाना हो गये। सारी सभा दंग रह गयी। सच्चा न्याय करने वाले प्रतिभासंपन्न बालक की युक्तियुक्त चतुराई देखकर राजा भी बड़ा प्रभावित हुआ।

वही बालक रमण आगे चलकर महाराष्ट्र का मुख्य न्यायधीश बना और मरियाड़ा रमण के नाम से सुविख्यात हुआ।

प्रतिभा विकसित करने की कुंजी सीख लो। जरा सी बात में खिन्न न होना, मन को स्वस्थ व शांत रखना, ऐसी पुस्तकें पढ़ना जो संयम और सदाचार बढ़ायें, परमात्मा का ध्यान करना और सत्पुरुषों का सत्संग करना – ये ऐसी कुंजियाँ हैं जिनके द्वारा तुम भी प्रतिभावान बन सकते हो।

ॐ

अनुक्रम

तिलकजी की सत्यनिष्ठा

बाल गंगाधर तिलकजी के बाल्यकाल की यह घटना हैः

एक बार वे घर पर अकेले ही बैठे थे कि अचानक उन्हें चौपड़ खेलने की इच्छा हुई। किंतु अकेले चौपड़ कैसे खेलते? अतः उन्होंने घर के खंभे को अपना साथी बनाया। वे दायें हाथ से खंभे के लिए और बायें हाथ से अपने लिए खेलने लगे। इस प्रकार खेलते-खेलते वे दो बार हार गये।

दादी माँ दूर से यह सब नजारा देख रही थीं। हँसते हुए वे बोलीः

"धत् तेरे की... एक खंभे से हार गया?"

तिलकजीः "हार गया तो क्या हुआ? मेरा दायाँ हाथ खंभे के हवाले था और मुझे दायें हाथ से खेलने की आदत है। इसीलिए खंभा जीत गया, नहीं तो मैं जीतता।"

कैसा अदभुत था तिलकजी का न्याय ! जिस हाथ से अच्छे से खेल सकते थे उससे खंभे के पक्ष में खेले और हारने पर सहजता से हार भी स्वीकार कर ली। महापुरुषों का बाल्यकाल भी नैतिक गुणों से भरपूर ही हुआ करता है।

इसी प्रकार एक बार छः मासिक परीक्षा में तिलकजी ने प्रश्नपत्र के सभी प्रश्नों के सही जवाब लिख डाले।

जब परीक्षाफल घोषित हुआ तब विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने के लिए भी बाँटे जा रहे थे। जब तिलक जी की कक्षा की बारी आयी तब पहले नंबर के लिए तिलकजी का नाम घोषित किया गया। ज्यों ही अध्यापक तिलकजी को बुलाकर इनाम देने लगे, त्यों ही बालक तिलकजी रोने लगे।

यह देखकर सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ ! जब अध्यापक ने तिलकजी से रोने का कारण पूछा तो वे बोलेः

"अध्यापक जी ! सच बात तो यह है कि सभी प्रश्नों के जवाब मैंने नहीं लिखे हैं। आप सारे प्रश्नों के सही जवाब लिखने के लिए मुझे इनाम दे रहे हैं, किंतु एक प्रश्न का जवाब मैंने अपने मित्र से पूछकर लिखा था। अतः इनाम का वास्तविक हकदार मैं नहीं हूँ।"

अध्यापक प्रसन्न होकर तिलकजी को गले लगाकर बोलेः

"बेटा ! भले तुम्हारा पहले नंबर के लिए इनाम पाने का हक नहीं बनता, किंतु यह इनाम अब तुम्हें सच्चाई के लिए देता हूँ।"

ऐसे सत्यनिष्ठ, न्यायप्रिय और ईमानदार बालक ही आगे चलकर महान कार्य कर पाते हैं।

प्यारे विद्यार्थियो ! तुम ही भावी भारत के भाग्य विधाता हो। अतः अभी से अपने जीवन में सत्यपालन, ईमानदारी, संयम, सदाचार, न्यायप्रियता आदि गुणों को अपना कर अपना जीवन महान बनाओ। तुम्हीं में से कोई लोकमान्य तिलक तो कोई सरदार वल्लभभाई पटेल, कोई शिवाजी तो कोई महाराणा प्रताप जैसा बन सकता है। तुम्हीं में से कोई ध्रुव, प्रह्लाद, मीरा, मदालसा का आदर्श पुनः स्थापित कर सकता है।

उठो, जागो और अपने इतिहास-प्रसिद्ध महापुरुषों के जीवन से प्रेरणा लेकर अपने जीवन को भी दिव्य बनाने के मार्ग पर अग्रसर हो जाओ.... भगवत्कृपा और संत-महापुरुषों के आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

ॐ

अनुक्रम

दयालु बालक शतमन्यु

सत्ययुग की एक घटना हैः

एक बार हमारे देश में अकाल पड़ा। वर्षा के अभाव के कारण अन्न पैदा नहीं हुआ। पशुओं के लिए चारा नहीं रहा। दूसरे वर्ष भी वर्षा नहीं हुई। दिनों दिन देश की हालत खराब होती चली गयी। सूर्य की प्रखर किरणों के प्रभाव से पृथ्वी का जल स्तर बहुत नीचे चला गया। फलतः धरती के ऊपरी सतह की नमी गायब हो गयी। नदी तालाब सब सूख गये। वृक्ष भी सूखने लगे। मनुष्य और पशुओं में हाहाकार मच गया।

अकाल की अवधि बढ़ती गयी। एक-दो वर्ष नहीं, पूरे बारह वर्षों तक बारिश की एक बूँद भी धरती पर नहीं गिरी। लोग त्राहि माम्-त्राहि माम् पुकारने लगे। कहीं अन्न नहीं... कहीं जल नहीं.... वर्षा और शीत ऋतुएँ नहीं.... सर्वत्र सदा एक ही ग्रीष्म ऋतु प्रवर्तमान रही। धरती से उड़ती हुई धूल और तेज लू में पशु पक्षी ही नहीं, न जाने कितने मनुष्य काल कवलित हो गये, कोई गिनती नहीं। भुखमरी के कारण माताओं के स्तनों में दूध सूख गया। अतः दूध न मिलने के कारण कितने ही नवजात शिशु मृत्यु की गोद में सदा के लिए सो गये। इस प्रकार पूरे देश में नर-कंकालों और अन्य जीवों की हड्डियों का ढेर लग गया। एक मुट्ठी अन्न भी कोई किसी को कहाँ से देता? परिस्थिति दिनोंदिन बिगड़ती ही चली गयी। अन्न-जल के लाले पड़ गये।

इस दौरान किसी ने कहा कि नरमेध यज्ञ किया जाय तो वर्षा हो सकती है। यह बात अधिकांश लोगों को जँच गयी।

अतः एक निश्चति तिथि और निश्चित स्थान पर एक विशाल जनसमूह एकत्र हुआ। पर सभी मौन थे। सभी के सिर झुके हुए थे। प्राण सबको प्यारे होते हैं। जबरदस्ती करके किसी की भी बलि नहीं दी जा सकती थी क्योंकि यज्ञों का नियम ही ऐसा था।

इतने में अचानक सभा का मौन टूटा। सबने दृष्टि उठायी तो देखा कि एक 12 वर्ष का अत्यंत सुंदर बालक सभा के बीच में खड़ा है। उसके अंग-प्रत्यंग कोमल दिखाई दे रहे थे। उसने कहाः

"उपस्थित महानुभावो ! असंख्य प्राणियों की रक्षा और देश को संकट की स्थिति से उबारने के लिए मैं अपनी बलि देने को सहर्ष प्रस्तुत हूँ। ये प्राण देश के हैं और देश के काम आ जायें, इससे अधिक सदुपयोग इनका और क्या हो सकता है? इसी बहाने विश्वात्मरूप प्रभु की सेवा इस नश्वर काया के बलिदान से हो जायेगी।"

"बेटा शतमन्यु ! तू धन्य है ! तून अपने पूर्वजों को अमर कर दिया।" ऐसा उदघोष करते हुए एक व्यक्ति ने दौड़कर उसे अपने हृदय से लगा लिया।

वह व्यक्ति कोई और नहीं वरन् स्वयं उसके पिता थे। शतमन्यु की माता भी वहीं कहीं पर उपस्थित थीं। वे भी शतमन्यु के पास आ गयीं। उनकी आँखों से झर-झर अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। माँ ने शतमन्यु को अपनी छाती से इस प्रकार लगा लिया जैसे उसे कभी नहीं छोड़ेंगी।

नियत समय पर यज्ञ-समारोह यथाविधि शुरु हुआ। शतमन्यु को अनेक तीर्थों के पवित्र जल से स्नान कराकर नये वस्त्राभूषण पहनाये गये। शरीर पर सुगंधित चंदन का लेप लगाया गया। उसे पुष्पमालाओं से अलंकृत किया गया।

इसके बाद बालक शतमन्यु यज्ञ-मण्डप में आया। यज्ञ-स्तम्भ के समीप खड़ा होकर वह देवराज इन्द्र का स्मरण करने लगा। यज्ञ-मण्डप एकदम शांत था। बालक शतमन्यु सिर झुकाये हुए अपने-आपका बलिदान देने को तैयार खड़ा था। एकत्रित जनसमूह मौन होकर उधर एकटक देख रहा था। उस क्षण शून्य में विचित्र बाजे बज उठे। शतमन्यु पर पारिजात पुष्पों की वृष्टि होने लगी। अचानक मेघगर्जना के साथ वज्रधारी इन्द्र प्रकट हो गये। सब लोग आँखें फाड़-फाड़कर आश्चर्य के साथ इस दृश्य को देख रहे थे।

शतमन्यु के मस्तक पर अत्यन्त स्नेह से हाथ फेरते हुए सुरपति बोलेः "वत्स ! तेरी देशभक्ति और जनकल्याण की भावना से मैं संतुष्ट हूँ। जिस देश के बालक अपने देश की रक्षा के लिए अपने प्राणों को न्योछावर करने के लिए हमेशा उद्यत रहते हैं, उस देश का कभी पतन नहीं हो सकता। तेरे त्यागभाव से संतुष्ट होने के कारण तेरी बलि के बिना ही मैं यज्ञ-फल प्रदान कर दूँगा।" इतना कहकर इन्द्र अन्तर्धान हो गये।

दूसरे ही दिन इतनी घनघोर वर्षा हुई कि धरती पर सर्वत्र जल-ही-जल दिखने लगा। परिणामस्वरूप पूरे देश में अन्न-जल, फल-फूल का प्राचूर्य हो गया। देश के लिए प्राण अर्पित करने वाले शतमन्यु के त्याग, तप और जन कल्याण की भावना ने सर्वत्र खुशियाँ ही खुशियाँ बिखेर दीं। सबके हृदय में आनंद के हिलोरे उठने लगे।

धन्य है भारतभूमि ! धन्य हैं भारत के शतमन्यु जैसे लाल ! जो देश की रक्षा के लिए अपने प्राणों का त्याग करने को भी तैयार रहते हैं।

ॐ

अनुक्रम

सारस्वत्य मंत्र और बीरबल

11 वर्ष का बीरबल आगरा में पान का गल्ला चलाता था। गल्ले में बैठकर सरौते से सुपारी काटता जाता और सारस्वत्य मंत्र का जप भी करता जाता। प्रतिदिन बैठकर नियमपूर्वक 5 मालाएँ करता था, इसके अलावा जब भी समय मिलता तब मानसिक जप किया करता। सारस्वत्य मंत्र के प्रभाव से उसकी बुद्धि भी खूब विकसित हो गयी थी।

एक दिन एक खोजा आया और उसने बीरबल से पूछाः "अरे भाई ! चूना मिलेगा? पावभर लेना है।"

बीरबल ने खोजा कि तरफ देखा और थोड़ी देर शांत हो गया। उसे खोजा की पूरी हकीकत का पता चल गया क्योंकि बीरबल ने तो अपने गुरु से सारस्वत्य मंत्र ले रखा था। उसने खोजा से पूछाः

"क्या आप अकबर बादशाह के यहाँ पान लगाते हैं?"

खोजाः "हाँ, हाँ...."

"आपने कल बादशाह को पान लगाकर दिया होगा और उसमें चूना ज्यादा लग गया होगा जिसकी वजह से उनके मुँह में छाले पड़ गये होंगे। इसीलिए आज बादशाह ने आपके द्वारा पावभर चूना मँगवाया है। अब तलवार और भाले वाले सिपाहियों के बीच घेरकर आपको यह पावभर चूना खाने के लिए बाध्य किया जायेगा।"

"तौबा...! तौबा....! फिर तो मैं मर जाऊँगा। क्या करूँ? भाग जाऊँ या अपने-आपको खत्म कर दूँ?"

"भाग जाने से काम नहीं बनेगा, पकड़े जाओगे। मर जाने से भी काम नहीं चलेगा। आत्महत्या करने वाला तो कायर होता है, कायर। डरपोक मनुष्य ही आत्महत्या करता है। आत्महत्या करना महापाप है।"

आत्महत्या के विषय में तो सोचना तक नहीं चाहिए। जो आत्महत्या करने का विचार करता है, उसे समझ लेना चाहिए कि आत्महत्या कायरता की पराकाष्ठा है। आत्महत्या निराशा की पराकाष्ठा है। कभी कायर न बनें, निराश न हों। प्रयत्न करें, पुरुषार्थ करें। हजार बार हार जाने पर भी निराश न हों। फिर से प्रयास करें। Try and try, you will succeed.

प्रत्येक विघ्न-बाधारूपी अँधेरी रात के पीछे सफलतारूपी प्रभात आता ही है। प्रयत्न करते रहने से एक बार नहीं तो दूसरी बार, दूसरी बार नहीं तो तीसरी बार.... मार्ग मिल ही जायेगा, आपके लिए सफलता का द्वार जरूर खुल जायेगा। उद्योगी बने, पुरुषार्थी बनें, निर्भय रहें।

बीरबलः "भागने से भी काम नहीं चलेगा और मर जाने से भी काम नहीं चलेगा।"

खोजाः "खुदा खैर करे, बंदा मौज करे...."

"खुदा खैर तो बहुत करता है, किंतु बंदा अपनी बुद्धि का उपयोग करे तब न?"

"तो अब क्या करूँ? तू ही बता। तू है तो छोटा-सा बच्चा, किंतु तेरी अक्ल जोरदार है !"

"खोजाजी ! पावभर चूना ले जाइये और देशी घी भी ले जाइये। पावभर घी पीकर दरबार में जाना। यदि बादशाह पावभर चूना खाने को कहेंगे तो भी चिन्ता न रहेगी। घी चूने को मारेगा और चूना घी को मारेगा। आप जीवित रह जायेंगे।"

"ऐसा?"

"हाँ, ऐसा ही होगा। सुपारी बहुत कड़क होती है इसलिए बूढे लोग ठीक से नहीं चबा सकते। किंतु यदि बादाम के साथ सुपारी को चबाया जाये तो सुपारी आसानी से चबायी जा सकती है। उसी प्रकार घी पीकर जाओगे तो चूना घी को मारेगा और घी चूने को मारेगा। आप बच जाओगे।"

खोजा ने पावभर चूना लिया और देशी घी पीकर पहुँच गया दरबार में अकबर को पावभर चूना दिया। अकबर क्रोधित होते हुए कहने लगाः

"नालायक ! मूर्ख ! लापरवाही से काम करता है? पान में ज्यादा चूना डालने से क्या होता है, अब देख। यह पावभर चूना अभी मेरे सामने ही खा जा।"

खोजा के आस-पास तलवार और भाले लेकर सिपाही तैनात कर दिये गये, जिससे खोजा भाग न पाये। खोजा बिना घबराये चूना खाने लगा। जिसे बीरबल जैसा सीख देनेवाला मिल गया हो, उसे भय किसका? चिन्ता किसकी? लोग जैसे मक्खन खाते हैं, वैसे ही वह चूना खा गया क्योंकि वह देशी घी पीकर आया था।

अकबरः "जा, नालायक ! अब घर जाकर मर।"

परंतु खोजा जानता था कि वह मरनेवाला नहीं है। दूसरे ही दिन खोजा फिर से दरबार में हाजिर हो गया। अकबर आश्चर्यचकित होकर उसे देखता ही रह गया।

"अरे ! तू जिंदा कैसे रह गया? तेरे मुँह और पेट में छाले नहीं पड़े? जरा मुँह खोलकर तो दिखा।"

खोजा का मुँह देखकर अकबर दंग रह गया। अरे ! इसको तो चूने की कोई असर ही नहीं हुई ! उसने खोजा से पूछाः

"यह कैसे हुआ?"

खोजाः "जहाँपनाह ! जब मैं चूना लेने के लिए पान के गल्ले पर पहुँचा, तब वह पानवाला बीरबल आपके मन की बात जान गया। मुझे तो कुछ पता ही नहीं था। उसने ही मुझे कहा कि 'बादशाह तुझे यह चूना खिलायेंगे।' मैं तौबा.... तौबा.... पुकार उठा। उसने दया करके मुझे उपाय बताया कि 'आप घी पीकर जाना। घी चूने को मारेगा, चूना घी को मारेगा और आप जीवित रह जाओगे।' इसीलिए जहाँपनाह ! मैं घी पीकर ही दरबार में आया था। पावभर चूना खाने के बावजूद भी घी के कारण बच गया।"

अकबर विचारने लगा कि 'मेरे मन की बात पान के गल्ले पर बैठने वाले 11 वर्षीय बीरबल ने कैसे जान ली? घी चूने को मारता है और चूना घी को मारता है ऐसी अक्ल तो मेरे पास भी नहीं है, फिर इस छोटे-से बालक में कैसे आयी? जरूर वह बालक होनहार और खूब होशियार होगा।'

अकबर ने अपने वजीर को हुक्म कियाः "जाओ, उस बालक को आदरसहित पालकी में बिठाकर ले आओ।"

बीरबल को आदरपूर्वक पालकी में बिठाकर राज-दरबार में लाया गया। उससे कई प्रश्न पूछे गये। अकबर ने पूछाः

"12 में से एक जाय तो कितने बचते हैं?"

बीरबलः "मैं जवाब दूँ उससे पहले दूसरे वजीरों से पूछना है?"

अकबरः "पहले दूसरे वजीर इसका जवाब दें।"

किसी वजीर ने कहा '11' तो किसी ने कहा '5 और 6' किसी ने कहा '8 और 3' तो किसी ने कहा '7 और 4'।

बुद्धिमान बीरबल ने विचार किया कि 12 में से एक जाये तो 11 बचते हैं। इस प्रश्न का जवाब तो यही होगा, परंतु ऐसा सामान्य प्रश्न बादशाह नहीं पूछ सकते। फिर भी यदि पूछ रहे हैं तो जरूर इसमें कोई रहस्य होगा।

आखिर बीरबल ने विचार कर कहाः

"12 में से एक जाये तो शून्य बाकी बचता है।"

सब वजीर बीरबल की ओर देखने लगे। अकबर ने पूछाः "इसका अर्थ क्या?"

"वर्ष में 12 महीने होते हैं। उसमें से सावन का महीना बरसात के बिना ही निकल जाय तो अनाज उगेगा ही नहीं, इससे किसान के तो बारह-के-बारह महीने गये।"

"शाबाश.....! शाबाश....!"

अकबर ने जो भी सवाल पूछे उन सबके बीरबल ने युक्तियुक्त जवाब दिये। अकबर ने कहाः "पान का गल्ला चलाने वाले ! तू तो मेरा वजीर बनने के योग्य है।"

उसी वक्त अकबर ने 11 वर्ष के छोटे-से बीरबल को अपना वजीर नियुक्त कर दिया। फिर तो जीवनभर बीरबल अकबर का प्रिय वजीर बना रहा।

सारस्वत्य मंत्र के जप और सत्संग का ही यह प्रभाव था, जिससे बीरबल इतनी नन्हीं सी उम्र में ही चमक उठा।

बीरबल अपनी बुद्धिमत्ता के कारण अकबर का प्रियपात्र बन गया। इससे बहुत-से लोग बीरबल से ईर्ष्या से जलने लगे। बीरबल को कई बार दरबार में से निकालने के प्रयत्न किये गये, परंतु बीरबल इतना चतुर था कि हर बार षड्यंत्र से बच निकलता। बीरबल को हटाने के लिए विरोधी अनेक प्रकार की युक्ति-प्रयुक्तियाँ आजमाते, किंतु विजय हमेशा बीरबल की ही होती। फिर भी दूसरे वजीर जब तब बादशाह के कान भरते रहते।

एक बार वजीरों ने कहाः "जहाँपनाह ! आपने बीरबल को सिर चढ़ा रखा है। आज हम सब मिलकर उसकी हँसी उड़ायेंगे।"

अकबर भी उनके साथ मिल गया। इतने में ही बीरबल आया। उसे देखकर अकबर और सब वजीर हँसने लगे, उसका मखौल उड़ाने लगे। बीरबल समझ गया कि बादशाह और मुझसे ईर्ष्या करने वाले वजीर जान-बूझकर मुझ पर हँस रहे हैं। जहाँ सभी हँस रहे हैं, वहाँ मैं क्यों खामोश रहूँ? बीरबल भी पेट पकड़कर हँसने लगा। वह इतना हँसा, इतना हँसा कि उसे हँसते देखकर सब वजीरों का मुँह छोटा हो गया। वे विचारने लगे कि हम जिस बीरबल की हँसी उड़ा रहे हैं, वह तो स्वयं ही हँस रहा है !

कोई हँसकर आपको फीका दिखाना चाहे तो युक्ति आजमाकर अपने असली हास्य से उस फीकेपन को मधुरता में बदल देना चाहिए।

अकबरः "बीरबल ! तुम क्यों हँसे?"

बीरबलः "जहाँपनाह ! आप क्यों हँसे? पहले आप बतायें।"

"मैंने तो रात्रि में एक स्वप्न देखा था।"

"क्या स्वप्न देखा?"

"स्वप्न में हम दोनों यात्रा कर रहे थे। बहुत गर्मी पड़ गयी थी, इसलिए हम दोनों ने स्नान किया। जंगल में दो कुंड थे। एक था दूध-मलाई का कुंड और दूसरा था गटर के पानी का कुंड। मैंने दूध-मलाईवाले कुंड में डुबकी मारी और तुमने गटर के पानी पीने वाले कुंड में। तू भी नहाया और मैं भी। मैं तो दूध में नहाया और तू गटर के गंदे पानी में। अभी उसे याद करके ही हँस रहा था।"

"मैं भी इसीलिए हँस रहा था कि आपका स्वप्न और मेरा स्वप्न एक ही है। हम दोनों कुंड में तो गिर गये थे, परंतु नहाने के उद्देश्य से न निकलने के कारण साथ में तौलिया नहीं ले

गये थे। गर्मी लगी इसलिए नहाये। जब हम बाहर निकले, तब आपने मुझे चाटा और मैंने आपको। मुझे दूध-मलाई चाटने को मिली और आपको गटर का मसाला ! इसलिए मुझे हँसी आ रही है।"

"तौबा.... तौबा... यह क्या कर रहे हो?"

"मैंने जो स्वप्न देखा वही कह रहा हूँ। आपका स्वप्न तो बीच में ही टूट गया, परंतु मैंने यह आगे का भी देखा।"

बीरबर भगवद् भजन, महापुरुषों के सत्संग, शास्त्र-अध्ययन और सारस्वत्य मंत्र के प्रभाव से इतना बुद्धिमान बन गया कि अकबर जैसा सम्राट भी उसकी बुद्धि के आगे हार मान लेता था।

जब तक बीरबल जीवित रहा, तब तक अकबर का जीवन आनंद, उल्लास और उत्साह से परिपूर्ण रहा। बीरबल का देहावसान होने पर अकबर बोल उठाः

"आज तक मैं एक मर्द के साथ जीता था। अब मुझे हिजड़ों के साथ जीना पड़ेगा। हे खुदाताला ! अब मेरे जीवन का रस चला गया। बीरबल जैसा रसीला व्यक्ति मुझे एक ही मिला। दूसरा कोई वजीर उसके जैसा नहीं है।"

अकबर ने बीरबल के संग में रहकर कई ऐसी बातें जानीं, जिसे सामान्य राजा नहीं जान पाते। बीरबल ने भी यह सब बातें परम सत्ता की कृपा से वहाँ जानीं, जहाँ से सब ऋषि जानते हैं।

यदि बाल्यावस्था से ही मानव को किसी ब्रह्मनिष्ठ सदगुरु का सान्निध्य मिल जाये, सत्संग मिल जाय, सारस्वत्य मंत्र मिल जाये और वह गुरु के मार्गदर्शन के अनुसार ध्यान-भजन करे, मंत्रजप करे तो उसके लिए महान बनना सरल हो जाता है। वह जिस क्षेत्र में चाहे, उस क्षेत्र में प्रगति कर सकता है। आध्यात्मिक मार्ग में भी वह खूब उन्नति कर सकता है और ऐहिक उन्नति तो आध्यात्मिक उन्नति के पीछे-पीछे स्वयं ही चली आती है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

मातृ-पितृ-गुरु भक्त पुण्डलिक

शास्त्रों में आता है कि जिसने माता-पिता और गुरु का आदर कर लिया उसके द्वारा सम्पूर्ण लोकों का आदर हो गया और जिसने इनका अनादर कर दिया उसके सम्पूर्ण शुभ कर्म निष्फल हो गये। वे बड़े ही भाग्यशाली हैं जिन्होंने माता-पिता और गुरु की सेवा के महत्त्व को समझा तथा उनकी सेवा में अपना जीवन सफल किया।

ऐसा ही एक भाग्यशाली सपूत था पुण्डलिक।

पुण्डलिक अपनी युवावस्था में तीर्थयात्रा करने के लिए निकला। यात्रा करते-करते काशी पहुँचा। काशी में भगवान विश्वनाथ के दर्शन करने के बाद पुण्डलिक ने लोगों से पूछाः "क्या यहाँ कोई पहुँचे हुए महात्मा हैं जिनके दर्शन करने से हृदय को शांति मिले और ज्ञान प्राप्त हो?"

लोगों ने कहाः हाँ, हैं। गंगा पार कुक्कुर मुनि का आश्रम है। वे पहुँचे हुए आत्मज्ञानी संत हैं। वे सदा परोपकार में लगे रहते हैं। वे इतनी ऊँची कमाई के धनी हैं कि साक्षात् माँ गंगा, माँ यमुना और सरस्वती उनके आश्रम में रसोईघर की सेवा के लिए प्रस्तुत हो जाती हैं।"

पुण्डलिक के मन में कुक्कुर मुनि से मिलने की जिज्ञासा तीव्र हो उठी। पता पूछते-पूछते वह पहुँच गया कुक्कुर मुनि के आश्रम में। भगवान की कृपा से उस समय कुक्कुर मुनि अपनी कुटिया के बाहर ही विराजमान थे। मुनि को देखकर पुण्डलिक ने मन ही मन प्रणाम किया और सत्संग-वचन सुने। मुनि के दर्शन और सत्संग श्रवण के पश्चात् पुण्डलिक को हुआ कि मुनिवर से अकेले में अवश्य मिलना चाहिए। मौका पाकर पुण्डलिक एकान्त में मुनि से मिल गया। मुनि ने पूछाः

"वत्स ! तुम कहाँ से आ रहे हो?"

पुण्डलिकः "मैं पंढरपुर, महाराष्ट्र से आया हूँ।"

"तुम्हारे माता-पिता जीवित हैं न?"

"हाँ, हैं।"

"तुम्हारे गुरु हैं?"

"हाँ, हैं। हमारे गुरु ब्रह्मज्ञानी हैं।"

कुक्कुर मुनि रुष्ट हो गयेः "पुण्डलिक ! तू बड़ा मूर्ख है। माता-पिता विद्यमान हैं, ब्रह्मज्ञानी गुरु हैं फिर भी यहाँ तीर्थ करने के लिए भटक रहा है? अरे पुण्डलिक ! मैंने जो कथा सुनी थी उससे तो मेरा जीवन बदल गया। मैं तुझे वही कथा सुनाता हूँ। तू ध्यान से सुन।

एक बार भगवान शंकर के यहाँ उनके दोनों पुत्रों में होड़ लगी कि 'कौन बड़ा?'

कार्तिक ने कहाः 'गणपति मैं तुमसे बड़ा हूँ।'

गणपतिः 'आप भले उम्र में बड़े हैं लेकिन गुणों से भी बड़प्पन होता है।'

निर्णय लेने के लिए दोनों गये शिव-पार्वती के पास। शिव-पार्वती ने कहाः 'जो सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा करके पहले पहुँचेगा, उसी का बड़प्पन माना जायेगा।'

कार्तिकेय तुरंत अपने वाहन मयूर पर निकल गये पृथ्वी की परिक्रमा करने। गणपति जी चुपके से किनारे चले गये। थोड़ी देर शांत होकर उपाय खोजा। फिर आये शिव-पार्वती के पास। माता-पिता का हाथ पकड़कर दोनों को ऊँचे आसन पर बिठाया, पत्र-पुष्प से उनके श्रीचरणों की पूजा की और प्रदक्षिणा करने लगे। एक चक्कर पूरा हुआ तो प्रणाम किया.... दूसरा चक्कर लगाकर प्रणाम किया... इस प्रकार माता-पिता की सात प्रदक्षिणाएँ कर लीं।

शिव-पार्वती ने पूछाः 'वत्स ! ये प्रदक्षिणाएँ क्यों कीं?"

गणपतिः 'सर्वतीर्थमयी माता.... सर्वदेवमयो पिता.... सारी पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने से जो पुण्य होता है वही पुण्य माता की प्रदक्षिणा करने से हो जाता है, यह शास्त्रवचन है। पिता का पूजन करने से सब देवताओं का पूजन हो जाता है। पिता देवस्वरूप हैं। अतः आपकी परिक्रमा करके मैंने सम्पूर्ण पृथ्वी की सात परिक्रमाएँ कर ली हैं।' तबसे गणपति प्रथम पूज्य हो गये।

शिवपुराण में आता हैः

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रकान्तिं च करोति यः।
तस्य वै पृथिवीजन्यफलं भवति निश्चितम्।।
अपहाय गृहे यो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत्।
तस्य पापं तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा।।
पुत्रस्य य महत्तीर्थं पित्रोश्चरणपंकजम्।
अन्यतीर्थं तु दूरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुनः।।
इदं संनिहितं तीर्थं सुलभं धर्मसाधनम्।
पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थं गेहे सुशोभनम्।।

'जो पुत्र माता-पिता की पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है, उसे पृथ्वी परिक्रमाजनित फल सुलभ हो जाता है। जो माता पिता को घर पर छोड़कर तीर्थयात्रा के लिए जाता है, वह माता-पिता की हत्या से मिलने वाले पाप का भागी होता है, क्योंकि पुत्र के लिए माता-पिता के चरण-सरोज ही महान तीर्थ हैं। अन्य तीर्थ तो दूर जाने पर प्राप्त होते हैं, परंतु धर्म का साधनभूत यह तीर्थ तो पास में ही सुलभ है। पुत्र के लिए माता-पिता और स्त्री के पति सुन्दर तीर्थ घर में ही विद्यमान हैं।'

(शि.पु., रूद्र.सं., कु. खं- 19.39-42)

पुण्डलिक ! मैंने यह कथा सुनी और मैंने मेरे माता-पिता की आज्ञा का पालन किया। यदि मेरे माता-पिता में कभी कोई कमी दिखती थी तो मैं उस कमी को अपने जीवन में नहीं लाता था और अपनी श्रद्धा को भी कम नहीं होने देता था। मेरे माता-पिता प्रसन्न हुए। उनका आशीर्वाद मुझ पर बरसा। फिर मुझ पर मेरे गुरुदेव की कृपा बरसी इसीलिए मेरी ब्रह्मज्ञान में स्थिति हुई और मुझे योग में सफलता मिली। माता-पिता की सेवा के कारण मेरा हृदय भक्तिभाव से भरा है। मुझे किसी अन्य इष्टदेव की भक्ति करने की कोई मेहनत न करनी पड़ी। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।

मंदिर में तो पत्थर की मूर्ति में भगवान की भावना की जाती है जबकि माता-पिता और गुरुदेव में तो सचमुच परमात्मदेव हैं, ऐसा मानकर मैंने उनकी प्रसन्नता प्राप्त की। फिर तो मुझे न वर्षों तक तप करना पड़ा न ही अन्य विधि-विधानों की कोई मेहनत करनी पड़ी। तुझे भी पता है कि यहाँ के रसोईघर में स्वयं गंगा-यमुना-सरस्वती आती हैं। तीर्थ भी ब्रह्मज्ञानी के द्वार पर

पावन होने के लिए आते हैं। ऐसा ब्रह्मज्ञान माता-पिता और ब्रह्मज्ञानी गुरु की कृपा से मुझे मिला है।

पुण्डलिक को अपनी गलती का एहसास हुआ। उसने कुक्कुर मुनि को प्रणाम किया और पंढरपुर जाकर माता-पिता की सेवा में लग गया।

माता-पिता की सेवा को ही उसने प्रभु की सेवा मान लिया। माता-पिता के प्रति उसकी सेवा की निष्ठा देखकर भगवान नारायण बड़े प्रसन्न हुए और स्वयं उसके समक्ष प्रकट हुए। पुण्डलिक उस समय माता-पिता की सेवा में व्यस्त था। उसने भगवान को बैठने के लिए एक ईंट दी।

अभी भी पंढरपुर में पुण्डलिक की दी हुई ईंट पर भगवान विष्णु खड़े हैं और पुण्डलिक की मातृ-पितृभक्ति की खबर दे रहा है पंढरपुर का तीर्थ।

मैंने तो यह भी देखा है कि जिन्होंने अपने माता-पिता और ब्रह्मज्ञानी गुरु को रिझा लिया है वे भगवान तुल्य पूजे जाते हैं। उनको रिझाने के लिए पूरी दुनिया लालायित रहती है। इतने महान हो जाते हैं वे मातृ-पितृभक्त से और गुरुभक्त से !

ॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

दीर्घायु का रहस्य

चीन के पेकिंग (बीजिंग) शहर के एक 250 वर्षीय वृद्ध से पूछा गयाः "आपकी इतनी दीर्घायु का रहस्य क्या है?"

उस चीनी वृद्ध ने जो उत्तर दिया, वह सभी के लिए लाभदायक व उपयोगी है। उसने कहाः

"मेरे जीवन मे तीन बाते हैं जिनकी वजह से मैं इतनी लम्बी आयु पा सका हूँ।

एक तो यह है कि मैं कभी उत्तेजना के विचार नहीं करता तथा दिमाग में उत्तेजनात्मक विचार नहीं भरता हूँ। मेरे दिल-दिमाग शांत रहें, ऐसे ही विचारों को पोषण देता हूँ।

दूसरी बात यह है कि मैं उत्तेजित करनेवाला, आलस्य को बढ़ानेवाला भोज्य पदार्थ नहीं लेता और ही अनावश्यक भोजन लेता हूँ। मैं स्वाद के लिए नहीं, स्वास्थ्य के लिए भोजन करता हूँ।

तीसरी बात यह है कि मैं गहरा श्वास लेता हूँ। नाभि तक श्वास भर जाये इतना श्वास लेता हूँ और फिर छोड़ता हूँ। अधूरा श्वास नहीं लेता।"

लाखों-करोड़ों लोग इस रहस्य को नहीं जानते। वे पूरा श्वास नहीं लेते। पूरा श्वास लेने से फेफड़ों का और दूसरे अवयवों का अच्छी तरह से उपयोग होता है तथा श्वास की गति कम होती

है। जो लोग जल्दी-जल्दी श्वास लेते हैं वे एक मिनट में 14-15 श्वास गँवा देते हैं। जो लोग लम्बे श्वास लेते हैं वे एक मिनट में 10-12 श्वास ही खर्च करते हैं। इससे आयुष्य की बचत होती है।

कार्य करते समय एक मिनट में 12-13 श्वास खर्च होते हैं। दौड़ते समय या चलते-चलते बात करते समय एक मिनट में 18-20 श्वास खर्च होते हैं। क्रोध करते समय एक मिनट में 24 से 28 वर्ष श्वास खर्च हो जाते हैं और काम-भोग के समय एक मिनट में 32 से 36 श्वास खर्च जाते हैं। जो अधिक विकारी हैं उनके श्वास ज्यादा खत्म होते हैं, उनकी नस-नाड़ियाँ जल्दी कमजोर हो जाती हैं। हर मनुष्य का जीवनकाल उसके श्वासों के मुताबिक कम-अधिक होता है। कम श्वास (प्रारब्ध) लेकर आया हो तो भी निर्विकारी होगा तो ज्यादा जी लेगा। भले कोई अधिक श्वास लेकर आया हो लेकिन अधिक विकारी जीवन जीने से वह उतना नहीं जी सकता जितना प्रारब्ध से जी सकता था।

जब आदमी शांत होता है तो उसके शरीर से जो आभा निकलती है वह बहुत शांति से निकलती है और जब आदमी उत्तेजात्मक भावों में, विचारों में आता है या क्रोध के समय काँपता है, उस वक्त उसके रोमकूप से अधिक आभा निकलती है। यही कारण है कि क्रोधी आदमी जल्दी थक जाता है जबकि शांत आदमी जल्दी नहीं थकता।

शांत होने का मतलब यह नहीं कि आलसी होकर बैठे रहें। अगर आलसी होकर बैठे रहेंगे तो शरीर के पुर्जे बेकार हो जायेंगे, शिथिल हो जायेंगे, बीमार हो जायेंगे। उन्हें ठीक करने के लिए फिर श्वास ज्यादा खर्च होंगे।

अति परिश्रम न करें और अति आरामप्रिय न बनें। अति खायें नहीं और अति भुखमरी न करें। अति सोये नहीं और अति जागे नहीं। अति संग्रह न करें और अति अभावग्रस्त न बनें। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा हैः युक्ताहारविहारस्य.....

डॉ. फ्रेडरिक कई संस्थाओं के अग्रणी थे। उन्होंने 84 वर्षीय एक वृद्ध सज्जन को सतत कर्मशील रहते हुए देखकर पूछाः "एक तो 84 वर्ष की उम्र, नौकरी से सेवानिवृत्त, फिर भी इतने सारे कार्य और इतनी भाग-दौड़ आप कैसे कर लेते हैं? ग्रह-नक्षत्र की जाँच-परख में आप मेरा इतना साथ दे रहे हैं ! क्या आपको थकान या कमजोरी महसूस नहीं होती? क्या आपको कोई बीमारी नहीं है?"

जवाब में उस वृद्ध ने कहाः "आप अकेले ही नहीं, और भी परिचित डॉक्टरों को बुलाकर मेरी तन्दुरुस्ती की जाँच करवा लें, मुझे कोई बीमारी नहीं है।"

कई डॉक्टरों ने मिलकर उस वृद्ध की जाँच की और देखा कि उस वृद्ध के शरीर में बुढ़ापे के लक्षण तो प्रकट हो रहे थे लेकिन फिर भी वह वृद्ध प्रसन्नचित्त था। इसका क्या कारण हो सकता है?

जब डॉक्टरों ने इस बात की खोज की तब पता चला कि वह वृद्ध दृढ़ मनोबल वाला है। शरीर में बीमारी के कितने ही कीटाणु पनप रहे हैं लेकिन दृढ़ मनोबल, प्रसन्नचित्त स्वभाव और

निरंतर क्रियाशील रहने के कारण रोग के कीटाणु उत्पन्न होकर नष्ट भी हो जाते हैं। वे रोग इनके मन पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाते।"

आलस्य शैतान का घर है। आलस्य से बढ़कर मानव का दूसरा कोई शत्रु नहीं है। जो सतत प्रयत्नशील और उद्यमशील रहता है, सफलता उसका वरण करती है। कहा भी गया हैः

उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।

'उद्यमशील के ही कार्य सिद्ध होते हैं, आलसी के नहीं। कभी भी सोये हुए सिंह के मुख में मृग स्वयं प्रवेश नहीं करते।'

अतः हे विद्यार्थियो ! उद्यमी बनो। साहसी बनो। अपना समय बरबाद मत करो। जो समय को बरबाद करते हैं, समय उन्हें बरबाद कर देता है। समय को ऊँचे और श्रेष्ठ कार्यों में लगान से समय का सदुपयोग होता है तथा तुम्हें भी लाभ होता है। जैसे, कोई व्यक्ति चपरासी के पद पर हो तो 8 घंटे के समय का सदुपयोग करे, जिलाधीश के पद पर हो तो भी उतना ही करे तथा राष्ट्रपति के पद पर हो तो भी उतना ही करे, फिर भी लाभ अलग-अलग होता है। अतः समय का सदुपयोग जितने ऊँचे कार्यों में करोगे, उतना ही लाभ ज्यादा होगा और ऊँचे-में-ऊँचे कार्य परमात्मा की प्राप्ति में समय लगाओगे तो तुम स्वयं परमात्मरूप होने का सर्वोच्च लाभ भी प्राप्त कर सकोगे।

उठो... जागो... कमर कसो। श्रेष्ठ विचार, श्रेष्ठ आहार-विहार और श्वास की गति के नियंत्रण की युक्ति को जानो और दृढ़ मनोबल रखकर, सतत कर्मशील रहकर दीर्घायु बनो। अपने समय को श्रेष्ठ कार्यों में लगाओ। फिर तुम्हारे लिए महान बनना उतना ही सहज हो जायेगा, जितना सूर्योदय होने पर सूरजमुखी का खिलना सहज होता है।

ॐ शांति.... ॐ हिम्मत.... ॐ साहस ..... ॐ बल.... ॐ दृढ़ता.... ॐ....ॐ....ॐ....

ॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

सफलता कैसे पायें?

किसी ने कहा हैः

अगर तुम ठान लो, तारे गगन के तोड़ सकते हो।
अगर तुम ठान लो, तूफान का मुख मोड़ सकते हो।।

यह कहने का तात्पर्य यही है कि जीवन में ऐसा कोई कार्य नहीं जिसे मानव न कर सके। जीवन में ऐसी कोई समस्या नहीं जिसका समाधान न हो।

जीवन में संयम, सदाचार, प्रेम, सहिष्णुता, निर्भयता, पवित्रता, दृढ़ आत्मविश्वास और उत्तम संग हो तो विद्यार्थी के लिए अपना लक्ष्य प्राप्त करना आसान हो जाता है।

यदि विद्यार्थी बौद्धिक-विकास के कुछ प्रयोगों को समझ लें, जैसे कि सूर्य को अर्घ्य देना, भ्रामरी प्राणायाम करना, तुलसी के पत्तों का सेवन करना, त्राटक करना, सारस्वत्य मंत्र का जप करना आदि तो उनके लिए परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होना आसान हो जायेगा।

विद्यार्थी को चाहिए कि रोज सुबह सूर्योदय से पहले उठकर सबसे पहले अपने इष्ट का, गुरु का स्मरण करे। फिर स्नानादि करके अपने पूजाकक्ष में बैठकर गुरुमंत्र, इष्टमंत्र अथवा सारस्वत्य मंत्र का जाप करे। अपने गुरु या इष्ट की मूर्ति की ओर एकटक निहारते हुए त्राटक करे। अपने श्वासोच्छ्वास की गति पर ध्यान देते हुए मन को एकाग्र करे। भ्रामरी प्राणायाम करे जो 'विद्यार्थी सर्वांगीण उत्थान शिविर' में सिखाया जाता है।

प्रतिदिन सूर्य को अर्घ्य दे और तुलसी के 5-7 पत्तों को चबाकर 2-4 घूँट पानी पिये।

रात को देर तक न पढ़े वरन् सुबह जल्दी उठकर उपर्युक्त नियमों को करके अध्ययन करे तो इससे पढ़ा हुआ शीघ्र याद हो जाता है।

जब परीक्षा देने जाये तो तनाव-चिन्ता से युक्त होकर नहीं वरन् इष्ट-गुरु का स्मरण करके, प्रसन्न होकर जाय।

परीक्षा भवन में भी जब तक प्रश्नपत्र हाथ में नहीं आता तब तक शांत तथा स्वस्थ चित्त होकर प्रसन्नता को बनाये रखे।

प्रश्नपत्र हाथ में आने पर उसे एक बार पूरा पढ़ लेना चाहिए और जिस प्रश्न का उत्तर आता है उसे पहले लिखे। ऐसा नहीं कि जो नहीं आता उसे देखकर घबरा जाये। घबराने से जो प्रश्न आता है वह भी भूल जायेगा।

जो प्रश्न आते हैं उन्हें हल करने के बाद जो नहीं आते उनकी ओर ध्यान दे। अंदर दृढ़ विश्वास रखे कि मुझे ये भी आ जायेंगे। अंदर से निर्भय रहे और भगवत्स्मरण करके एकाध मिनट शांत हो जाय, फिर लिखना शुरु करे। धीरे-धीरे उन प्रश्नों के उत्तर भी मिल जायेंगे।

मुख्य बात यह है कि किसी भी कीमत पर धैर्य न खोये। निर्भयता तथा दृढ़ आत्मविश्वास बनाये रखे।

विद्यार्थियों को अपने जीवन को सदैव बुरे संग से बचाना चाहिए। न तो वह स्वयं धूम्रपान आदि करे न ही ऐसे मित्रों का संग करे। व्यसनों से मनुष्य की स्मरणशक्ति पर बड़ा खराब प्रभाव पड़ता है।

व्यसन की तरह चलचित्र भी विद्यार्थी की जीवनशक्ति को क्षीण कर देते हैं। आँखों की रोशनी को कम करने के साथ ही मन और दिमाग को भी कुप्रभावित करने वाले चलचित्रों से विद्यार्थियों को सदैव सावधान रहना चाहिए। आँखों के द्वारा बुरे दृश्य अंदर घुस जाते हैं और वे

मन को भी कुपथ पर ले जाते हैं। इसकी अपेक्षा तो सत्संग में जाना, सत्शास्त्रों का अध्ययन करना अनंतगुना हितकारी है।

यदि विद्यार्थी ने अपना विद्यार्थी-जीवन सँभाल लिया तो उसका भावी जीवन भी सँभल जाता है, क्योंकि विद्यार्थी-जीवन ही भावी जीवन की आधारशिला है। विद्यार्थीकाल में वह जितना संयमी, सदाचारी, निर्भय और सहिष्णु होगा, बुरे संग तथा व्यसनों को त्यागकर सत्संग का आश्रय लेगा, प्राणायाम-आसनादि को सुचारू रूप से करेगा उतना ही उसका जीवन समुन्नत होगा। यदि नींव सुदृढ़ होती है तो उस पर बना विशाल भवन भी दृढ़ और स्थायी होता है। विद्यार्थीकाल मानवजीवन की नींव के समान है, अतः उसको सुदृढ़ बनाना चाहिए।

इन बातों को समझकर उन पर अमल किया जाये तो केवल लौकिक शिक्षा में ही सफलता प्राप्त होगी ऐसी बात नहीं है वरन् जीवन की हर परीक्षा में विद्यार्थी सफल हो सकता है।

हे विद्यार्थियो ! उठो... जागो... कमर कसो। दृढ़ता और निर्भयता से जुट पड़ो। बुरे संग तथा व्यसनों को त्यागकर, संतों-सदगुरुओं के मार्गदर्शन के अनुसार चल पड़ो... सफलता तुम्हारे चरण चूमेगी।

धन्य है वे लोग जिनमें ये छः गुण हैं ! अंतर्यामी देव सदैव उनकी सहायता करते हैं-

उद्यमः साहसं धैर्यं बुद्धि शक्तिः पराक्रमः।
षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र देवः सहायकृत।।

'उद्योग, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम – ये छः गुण जिस व्यक्ति के जीवन में हैं, देव उसकी सहायता करते हैं।'

ॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

विद्यार्थियों से दो बातें

जबसे भारत के विद्यार्थी 'गीता', 'गुरुवाणी', 'रामायण' की महिमा भूल गये, तबसे वे पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण के शिकार बन गये। नहीं तो विदेश के विश्वविख्यात विद्वानों को भी चकित कर दे – ऐसा सामर्थ्य भारत के नन्हें-मुन्हें बच्चों में था।

आज का विद्यार्थी कल का नागरिक है। विद्यार्थी जैसा विचार करता है, देर सवेर वैसा ही बन जाता है। जो विद्यार्थी परीक्षा देते समय सोचता है कि 'मैं प्रश्नों को हल नहीं कर पाऊँगा... मैं पास नहीं हो पाऊँगा.... ' वह अनुत्तीण हो जाता और जो सोचता है कि मैं सारे प्रश्नों को हल कर लूँगा..... मैं पास हो जाऊँगा....' वह पास भी हो जाता है।

विद्यार्थी के अंदर कितनी अदभुत शक्तियाँ छिपी हुई हैं, इसका उसे पता नहीं है। जरूरत तो है उन शक्तियों को जगाने की। विद्यार्थी को कभी निर्बल विचार नहीं करना चाहिए।

वह कौन-सा उकदा है जो हो नहीं सकता? तेरा जी न चाहे तो हो नहीं सकता।

छोटा-सा कीड़ा पत्थर में घर करे, इन्सान क्या दिले-दिलबर में घर न करे?

हे भारत के विद्यार्थियो !

अपने जीवन में हजार-हजार विघ्न आयें, हजार बाधाएँ आ जायें लेकिन एक उत्तम लक्ष्य बनाकर चलते जाओ। देर सवेर तुम्हारे लक्ष्य की सिद्धि होकर ही रहेगी। विघ्न और बाधाएँ तुम्हारी सुषुप्त चेतना को, सुषुप्त शक्तियों को जागृत करने के शुभ अवसर हैं।

कभी भी अपने आप को कोसो मत। हमेशा सफलता के विचार करो, प्रसन्नता के विचार करो, आरोग्यता के विचार करो। **दृढ़ एवं पुरुषार्थी बनो और भारत के श्रेष्ठ नागरिक बनकर भारत की शान बढ़ाओ। ईश्वर एवं ईश्वरप्राप्त महापुरुषों के आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं...**

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम